षष्ठ अध्याय : तोड़ो कारा तोड़ो की प्रासंगिकता

i. व्यक्ति निर्माण : पूर्व एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य

व्यक्ति निर्माण क्या है ? लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार "व्यक्ति निर्माण व्यक्ति के चरित्र का निर्माण है"। आगे लेखक कहते हैं कि "चरित्र जो है उसमें बहुत सारे तत्व है जैसे ब्रह्मचर्य सत्य, सत्य दूसरा है, एक व्यक्ति झूठा हो तो वह चरित्रवान नहीं हो सकता, सेक्स के सम्बन्धों में भी उसको सत्यनिष्ठ होना पड़ेगा, अपनी पत्नी के प्रति निष्ठावान है तो चरित्रवान है, पैसे के मामले में अगर बेईमानी नहीं करता है, दूसरे के पैसे नहीं खाता है, तो भी चरित्र का वो गुण मानते हैं उसको, तो सत्य और इसके आसपास के जितने काम, क्रोध, मद, लोभ वगैरा छोड़कर के जो चरित्र है, चरित्र है। मतलब ये कि दूसरों को आप कष्ट नहीं देंगे, पर कल्याण करेंगे, ये सद गुण है चरित्र के, उनके आधार पर ही चरित्र को नापते हैं, अगर आप अपने स्वार्थ में दूसरों का अहित करते हैं तो आप चरित्रवान नहीं कहलाएँगे"।[1]..

चरित्र व्यक्ति निर्माण की पहली सीढ़ी है। सत्य के प्रति एकनिष्ठ होने को चरित्र का ही लक्षण माना जाता है। अगर किसी व्यक्ति के मन में संसार के कल्याण की भावना निहित है और वह केवल इसी चिंता में डूबा रहता है कि इस संसार में दूसरों का कल्याण किस प्रकार करना है स्वयं के स्वार्थ की ओर ध्यान नहीं देता है अर्थात् व्यक्ति के मन में जो मैं की भावना है कि मैं ही महत्वपूर्ण हूँ और इस संसार में केवल मुझे ही महत्व मिले और किसी को नहीं मिले यह भावना जिस व्यक्ति के मन में है वह व्यक्ति चरित्रवान नहीं है। हिंदू चिंतन के अनुसार गृहस्थ व्यक्ति को अपने परिवार के लोगों के प्रति, अपनी भार्या के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के भीतर छः ऋपुओं का निवास है ये छः ऋपु हैं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य। वहीं व्यक्ति चरित्रवान है जिसके मन में इन तत्वों का वास नहीं होता है क्योंकि ये वे तत्व हैं जो किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व को निर्माण की ओर नहीं बल्कि निरंतर विनाश की ओर ले जाते हैं। मानव का लक्ष्य कल्याण और उन्नति ही है। अतः किसी भी व्यक्ति के चरित्र के निर्माण के लिए अपने मन से इन छः ऋपुओं का संहार कर देना चाहिए।

व्यक्ति निर्माण से यहाँ अभिप्राय है समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का निर्माण केवल एक व्यक्ति का विकास नहीं। वडोदरा के शासक या राजा सायाजी राव गायकवाड़ ने अपने राज्य में ऊँची जाति, निम्न जाति, स्त्री, पुरुष, ग्रामीण जनता, नगरीय जनता सभी के विकास के लिए सभी लोगों को शिक्षित करने के लिए ही उन्होंने अपने राज्य में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत की थी क्योंकि केवल नगर में रहने वाले व्यक्ति का अगर शिक्षा के क्षेत्र में विकास हो या शिक्षा प्राप्त हो तो यह व्यक्ति निर्माण का उदाहरण नहीं हो सकता क्योंकि इससे किसी देश में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता। सायाजी ने स्त्री की शिक्षा को भी महत्व दिया है। अगर स्त्री को शिक्षा नहीं मिलेगी तो इसे व्यक्ति निर्माण की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।लेखक नरेंद्र कोहली ने सायाजी राव गायकवाड़ के विषय में लिखा है कि "स्त्री जातियों की शिक्षा के लिए और विकास के लिए विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ खोलीं और पिछड़ी जातियों के मार्ग में से बाधाएँ हटाकर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त किया। ग्रामों में चिकित्सा के लिए एक योजना आरम्भ की"।[2].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों को अगर व्यक्ति निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो इसे इस रूप में देखा जा सकता है कि अगर केवल उच्च वर्ग के लोग शिक्षित होंगे तो इससे व्यक्ति का विकास नहीं होगा बल्कि इससे केवल व्यक्ति के एक वर्ग का निर्माण होगा और दूसरा वर्ग चाहे वह स्त्री हो या निम्न वर्ग हो उनका निर्माण नहीं होगा। अर्थात् यहाँ व्यक्ति निर्माण नहीं हो पा रहा है।

स्वामी विवेकानंद ने सन्यास लेने के बाद एक परिव्राजक के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया था और भ्रमण करते हुए वर्तमान उत्तराखंड राज्य के अल्मोड़ा में पहुँचे थे तब उनके मन में पहाड़ी गाँवों के सौंदर्य को देखने की इच्छा हुई। वे निकल गए। लौटने के उपरांत उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके घर से तार आया है। अपने गुरुभाइयों के मनोभाव को देखकर इतना तो उन्हें अवश्य ही ज्ञात हो चुका था कि समाचार अच्छा नहीं है। तार के माध्यम से उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी छोटी बहन योगेन्द्रबाला ने अपने ससुराल में आत्महत्या कर लिया है। इस दुखद समाचार से विवेकानंद जैसे एक सन्यासी का मन भी कहीं न कहीं कुछ विचलित हो उठा था। लेखक के शब्दों में अगर कहा जाए कि "एक समाजिक नेता के रूप में भी हो सकता है। एक साधारण व्यक्ति के रूप में भी हो सकता है।

एक साधारण मनुष्य के रूप में भी हो सकता है"।[3].. स्वामीजी नारी जाति के कल्याण के लिए केवल शिक्षा की ही बात नहीं करते हैं बल्कि इसके साथ ही आध्यात्मिक जागरण की भी बात करते हैं कि भारत की महिलाओं को केवल विद्यालयी शिक्षा ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए। नारी को आध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से इस बात का अहसास दिलाना चाहिए कि नारी और कोई नहीं बल्कि स्वयं शक्ति स्वरूपा है। इस उपन्यास के तृतीय खंड में हृदय नामक एक ऐसा व्यक्ति है जिसे अपने धर्म की भाषा का ज्ञान नहीं है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा व्यक्ति निर्माण नहीं हो सकता।

यहाँ अखंडानंद का निर्माण एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरकर आया है जिसमें साम्प्रदायिकता की भावना दूर-दूर तक कहीं भी दिखाई नहीं देती है। नहीं तो वे एक ईसाई के घर में निवास नहीं करते। साथ ही हृदय बाबू भी स्वामीजी के सच्चे मित्र के रूप में अपना परिचय देते हैं जो स्वामीजी के गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद को सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर अपने घर में संकट के समय आश्रय प्रदान करते हैं। स्वामी विवेकानंद और उनके गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद एक परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते हुए अल्मोड़ा से दो मिल दूर जब भूख प्यास से अचेत हो चुके थे तब उनके प्राणों की रक्षा जुल्फ़िकर अली नामक एक फ़कीर ने की थी। फकीर ने जाति और धर्म से ऊपर उठकर स्वामीजी की सहायता की थी। यदि व्यक्ति निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो फकीर ने स्वयं को एक असाम्प्रदायिक व्यक्ति के रूप में निर्मित किया है। जिसके मन में केवल सहायता की भावना है। साम्प्रदायिकता की भावना दूर-दूर तक कहीं दिखाई ही नहीं देती। वह एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति है। या यह कहा जा सकता है कि उसका निर्माण एक सच्चे व्यक्ति के रूप में हुआ है। कदाचित यही कारण है कि वह स्वामीजी से कहता है कि "मैं शर्मिंदा हूँ कि आप जैसा पाक इन्सान मेरे द्वार पर आया और मैं उसे सिवाय एक खीरे के कुछ और न दे सका"।[4]..

स्वामी विवेकानंद ने स्वयं को एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में भी निर्मित किया है क्योंकि जब तक किसी देश का कोई भी व्यक्ति अपने देश के इतिहास को नहीं जानेगा तो वह स्वयं को उस देश के व्यक्ति के रूप में निर्मित नहीं कर पाएगा। स्वामीजी जब एक परिव्राजक के तौर पर भ्रमण करते हुए दिल्ली पहुँचते हैं और वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों

को देखकर उनके मन में निवास करने वाला ऐतिहासिक व्यक्ति जाग उठा था। स्वयं को स्वामीजी उस काल के इतिहास में ले गए। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "इंद्रप्रस्थ, जो अब दिल्ली के रूप में विद्यमान था, कितने ही नगर बसे और उजड़ गए, पर शासकों का प्रिय क्षेत्र यही रहा। स्वामी को लग रहा था कि उनके भीतर का इतिहास का विद्यार्थी जाग उठा था। इस समय उनके मन में कोई आध्यात्मिक प्रश्न नहीं था, कोई समाजिक समस्या ही नहीं थी इतिहास ही इतिहास था"।[5].. यहाँ स्वामीजी को एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में निर्मित किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति निर्माण के दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो इस विवरण के माध्यम से यहीं दर्शाया गया है कि स्वामी विवेकानंद एक ऐसे व्यक्ति के रूप में निर्मित होकर आते हैं जिनके मन में अपने धर्म और अपने देश की संस्कृति के प्रति गहरी आस्था और भक्ति की भावना निहित है।

भारतीय आध्यात्मिक प्रकृति का इतने हद तक उनके भीतर में विकास हो चुका था कि वे हिंदूधर्म के अद्वैत वेदांत आध्यात्मिक दर्शन के प्रेमी हो चुके थे। स्वामी विवेकानंद का आध्यात्मिक दर्शन भी अद्वैतवाद ही है। लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार "अध्यात्म तो उनका सीधा-सीधा अद्वैत है"।[6].. तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के खंड 4 में कविराज बिट्ठल के चरित्र को अगर व्यक्ति निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो वे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में पाठक के सामने उभरकर आते हैं जिनके मन में साधु-सज्जनों के प्रति दयालुता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। कविराज का निर्माण एक सज्जन व्यक्ति के रूप में हुआ है। इसका पता कविराज की इस विचारधारा से ही चलता है "स्वस्थ होना है तो सब कुछ भूलकर कुछ दिन शांति से यहीं रहिए। मान लीजिए कि आपको अस्पताल में भर्ती कर लिया गया है। अपने प्रभु को पत्र लिखकर कुछ दिनों का अवकाश ले लीजिए और यहाँ ऐसे ही रहिए, जैसे कोई छुट्टियाँ मनाने किसी पहाड़ पर जाता है या फिर आप एक सन्यासी के रूप में यहीं अपना चातुर्मास कीजिए"।[7].. अखंडानंद का गुजरात के जामनगर में जिस ब्रह्मचारीजी से परिचय था वे अपने आश्रम का सम्पूर्ण दायित्व अखंडानंद को देना चाहते थे क्योंकि ब्रह्मचारीजी अखंडानंद पर काफ़ी विश्वास किया करते थे। वे काफ़ी वृद्ध भी हो चले थे और उन्होंने अपना कोई उत्तराधिकारी भी घोषित नहीं किया था। ऐसे में उन्हें अपनी मृत्यु के

बाद आश्रम की चिंता थी। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने अखंडानंद को अपने आश्रम का दायित्व देना चाहा था। तब अखंडानंद ने कहा कि "जल तभी तक निर्मल रहता है, जब तक बहता है। सन्यासी तभी तक माया से मुक्त रहता है, जब तक परिव्राजक है। सन्यासी को एक स्थान पर तीन रातों से अधिक नहीं रुकना चाहिए"।[8].. यानी कि सन्यासी को गतिशील होना चाहिए। सन्यासी का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि वह मोह-माया के बंधन से मुक्त रहे। सन्यासी आध्यात्मिक जगत का व्यक्ति है। यहाँ सन्यासी को बहता हुआ जल बताया गया है। जल यहाँ गतिशीलता का प्रतीक है। जल के बहने से बंद होने की बात यहाँ बताई जा रही है। जल का न बहना सांसारिक मोह-माया के बंधन का प्रतीक है। सन्यासी अगर अपने मार्ग में चलते हुए रुक जाता है तो वह अपने लक्ष्य से हट जाता है। ब्रह्मचारीजी से बात करते हुए अखंडानंद ने एक बात बताई है जिससे यह स्पष्ट होता है कि सन्यासी का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए। "सम्पत्ति के लिए मन में इच्छा जागे तो पहले भगवा वस्त्र उतार देना चाहिए"।[9].. अर्थात् सम्पत्ति मोह-माया का प्रतीक है और भगवा वस्त्र त्याग का प्रतीक है। अतः सन्यासी को इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

किसी मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उपयुक्त परिवेश की भी भूमिका है। एडवर्ड टोरंटो स्टर्डी एक लम्बे काल तक हिमालय प्रदेश में विचरण करते रहे। साथ ही भारतीय सन्यासियों और हिन्दूधर्म से जुड़े होने के कारण उनके चरित्र में हिन्दू संस्कार पनप चुके थे। भोजन भी वे शाकाहारी ही ग्रहण किया करते थे। स्टर्डी सम्पूर्ण रूप से हिन्दूधर्म और भारतीय संस्कृति से जुड़ चुके थे। वे नारद भक्तिसूत्र और संस्कृत भाषा के प्रति अत्यंत ही आकृष्ट हो चुके थे। उनके मन में स्वामीजी से नारद भक्तिसूत्र और भारतीय दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने का विचार था। वे स्वामीजी के शिष्य भी बन चुके थे।हिन्दूधर्म के प्रति आकृष्ट होने के कारण और यह कहना चाहिए कि स्वामीजी के शिष्य होने के कारण शंकराचार्य के भाष्य का अध्ययन करने के लिए वे स्वामीजी की सहायता लेना चाहते थे। अतः दोनों गुरु-शिष्य उसका अध्ययन करते थे। लेखक नरेंद्र कोहली के शब्दों में कहा जाए तो "एडवर्ड टोरंटो स्टर्डी अपने गुरु से संस्कृत पढ़ रहे थे। उसी मानसिकता में टहलते हुए भी उन दोनों में नारद भक्तिसूत्र की चर्चा होती रहती थी। वे उस भाव संसार का अन्वेषण

करते थे, जिसे भक्ति कहा जाता है। और भक्ति को स्वामी से अधिक और कौन जानता था। स्वामी को भी एक योग्य शिष्य मिल गया था। वे स्टर्डी की नारद भक्तिसूत्र का भाष्य लिखने तथा भारतीय दर्शन के अध्ययन में सहायता करना चाहते थे। स्वामी के लिए यह एक प्रकार से विश्राम का समय था। स्वास्थ्य की दृष्टि से उनके लिए विश्राम के ये सप्ताह बहुत लाभकारी थे। कदाचित प्रभु ने इसी के लिए उन्हें भेजा था। स्टर्डी के लिए तो यह समय अत्यंत सौभाग्य से परिपूर्ण था ही"।[10].. इस सुंदर संसार के किसी भी देश, समाज आदि को भली प्रकार से निर्मित करने में व्यक्ति निर्माण की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्वामीजी स्वयं को केवल एक ऐसे व्यक्ति के रूप में निर्मित नहीं करना चाहते हैं जो केवल भारतवर्ष का ही नवनिर्माण कर सके बल्कि वह सम्पूर्ण विश्व के नव निर्माण में सहायक बन सके। एक वास्तविक आध्यात्मिक पुरुष स्वयं को केवल एक निश्चित समाज, प्रांत, देश, धर्म आदि का प्रतिनिधि न मानकर स्वयं को सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज का प्रतिनिधि मानता। क्योंकि आध्यात्मिक महापुरुषों का जब आविर्भाव होता है तो यह स्मरण रखना चाहिए कि वे किसी एक निर्दिष्ट समाज, जाति, धर्म, देश, भाषा आदि से जुड़े हुए लोगों का ही परित्राण की वार्ता लेकर ही नहीं आते हैं। बल्कि वे विश्व के समग्र मानव जाति के परित्राण की वार्ता को स्वयं के साथ लेकर आते हैं। वे उसी रूप में अपने भीतर का व्यक्ति निर्माण भी करते हैं। कदाचित यहीं कारण है कि नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि स्वामी विवेकानंद ने अपने पेरिस भ्रमण के दौरान अपने शिष्य आलसिंगा जो तमिलनाडु के निवासी थे उन्हें एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि "अपने जीवन का व्रत मैं जानता हूँ, और किसी राष्ट्र विशेष के प्रति न मेरा तीव्र अनुराग है और न घोर विद्वेष ही। मैं जैसे भारत का हूँ वैसे ही समग्र जगत का भी हूँ। इस विषय में किसी का मनमानी बातें करना नहीं चलेगा। जितना हो सका मैंने तुम लोगों की सहायता की है, अब तुम लोग स्वयं ही अपने को सम्भालो। किसी भी देश विशेष का मुझ पर क्या दावा हो सकता है ? क्या मैं किसी राष्ट्र का क्रीतदास हूँ ? मैं अपने पीछे एक ऐसी शक्ति देख रहा हूँ, जो मनुष्य, देवता या शैतान की शक्ति से भी अनेक गुनी सामर्थ्यशाली है। मुझे किसी की सहायता नहीं चाहिए। क्या तुम कहना चाहते हो कि जिन्हें तुम शिक्षित हिंदू कहते हो, उन्हीं जाति-भेद

जर्जरित, अंधविश्वासी, दयाशून्य, कपटी, नास्तिक कायरों में से एक होकर जीवन धारण करने और मरने के लिए मैंने जन्म लिया है" ?[11].. स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों में हिन्दुओं के वेदांत दर्शन का प्रसार किया था। उनके द्वारा वेदांत दर्शन में इन देशों की जनता के बीच व्यक्ति निर्माण के क्षेत्र में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोगों के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के निर्माण में इस दर्शन ने एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए मिस सारा एलेन वाल्डो का यह कथन देख सकते हैं जो उन्होंने मिस फिलिप से कहा था। यह कथन इस प्रकार है "बदलेगा। सब कुछ बदलेगा। जब स्वामी बदल रहे हैं तो क्लब वीमेन कैसे नहीं बदलेंगी"।[12].. इन बातों को सुनकर श्रीमती डचर का कहना था कि "स्वामी बदल रहे हैं ! मुझे तो लग रहा है कि वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। बदल तो भी रहे हैं। वेदांत पढ़ने के पश्चात कौन नहीं बदलेगा" ?[13].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता कि मिस वाल्डो का यह कहना सत्य ही है कि स्वामी भी बदल रहे हैं।

अतिथिपरायणता सद व्यक्तित्व के निर्माण में या एक सच्चे व्यक्ति के निर्माण में भूमिका निभाती है। दीवान हरिदास बिहारीदास देसाई के परिवार के लोगों के द्वारा सन्यासी का सत्कार किया जाना उन सभी लोगों को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में निर्मित कर रहा है जो भारतीय सनातन आध्यात्मिक संस्कृति के प्रतीक के रूप में उभरकर आते हैं। आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दुखी एवं दरिद्र जनों की सेवा करने से उनके हितों का निरंतर चिंतन करते रहने से मानव के व्यक्तित्व का निर्माण एक महापुरुष के रूप में हो जाता है। कदाचित यही कारण है कि श्री रामचंद्र के लिए यह भी कहा जाता है कि ग़रीब नवाजी करते हुए राम ग़रीब नवाज़ और महान पुरुष बने हैं। यहाँ यही बताया गया है कि राम इस संसार के सभी मनुष्यों पर दया करने वाले हैं। उनके कल्याण करने वाले व्यक्ति हैं। उनके चरित्र की इसी विशेषता ने उन्हें एक महापुरुष के रूप में निर्मित किया है। व्यक्ति निर्माण में शिक्षा की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सन्यासी बनने के उपरांत स्वामी विवेकानंद की भाँति ही उनके अन्य गुरुभ्राताओं ने अपने परिव्राजक धर्म का निर्वाह करते हुए भारत का भ्रमण किया था। स्वामीजी के उन्हीं

गुरुभ्राताओं में स्वामी अखंडानंद भी एक थे। वे स्वामीजी के अमेरिका चले जाने के बाद भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए राजपूताना के खेतड़ी में राजा अजितसिंह के यहाँ पहुँचे थे। खेतड़ी के राजा अजितसिंह ने स्वामी अखंडानंद का बड़ा ही अच्छा स्वागत किया। उस क्षेत्र के लोगों के भीतर व्यक्ति निर्माण को जगाने के लिए स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरुभाई स्वामी अखंडानंद को खेतड़ी अंचल के निम्न वर्ग की जनता के बीच में जाकर अपने देश का इतिहास, भूगोल और अध्यात्म के विषय में शिक्षित करने के लिए कहा क्योंकि जब तक इन लोगों को भारत के इतिहास भूगोल और अध्यात्म के बारे में जानकारी नहीं मिलेगी तब तक व्यक्ति निर्माण प्रणाली पूर्ण नही हो पाएगी। लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद की वे बातें जो उन्होंने एक पत्र के माध्यम से अपने गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद से कहीं थी उसे इन शब्दों में व्यक्त किया है “खेतड़ी नगर का दरिद्र एवं निम्न जातियों के द्वार-द्वार जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश दो। उन्हें भूगोल तथा इस प्रकार के विषयों का मौखिक पाठ पढ़ाओ। जब तक दरिद्रों के लिए कोई काम न करो, तब तक खाली बैठकर राजभोग खाकर हे प्रभु रामकृष्ण कहने का कोई लाभ न होगा। कभी-कभी दूसरे गाँवों में भी जाओ तथा लोगों को जीवन कला की शिक्षा दो और धर्म उपदेश भी करो। कर्म, उपासना और ज्ञान। पहले कर्म उससे मन शुद्ध हो जाएगा नहीं तो राख के ढेर पर पड़ी आहुति की भाँति सभी निष्फल हो जाएगा। जब गुणनिधि आ जाए, तब राजपूताना के प्रत्येक गाँव में दरिद्र और कंगालों के द्वार-द्वार घुमों। यदि लोग तुम्हारे भोजन को दूषित बताएँ तो उस प्रकार के भोजन को तुरंत त्याग दो। दूसरों के हित के लिए घास खाकर रहना अच्छा है। गेरुआ वस्त्र भोग के लिए नहीं है। वह वीर कार्य की पताका है। अपने शरीर, मन और वाणी को जगत हिताय अर्पण करना होगा। तुमने पढ़ा है मातृ देवो भव, पितृ देवो भव-- अपनी माता को ईश्वर जानो, अपने पिता को ईश्वर जानो। मैं कहता हूँ 'दरिद्र देवो भव, मूर्खो देवो भव। दरिद्र निरक्षर मूर्ख और दुखी यही तुम्हारे ईश्वर हों। यह जानो कि केवल इन्हीं की सेवा करना परम धर्म है"। स्वामीजी के इस पत्र को पाकर अखंडानंद के मन में प्रबल उत्साह का संचार हुआ।[14]..

व्यक्ति निर्माण करने हेतु देश के इतिहास, भूगोल और अध्यात्म की जानकारी देश के सभी जातियों के लोगों को होना चाहिए। स्वामी विवेकानंद के निर्देश के आधार पर स्वामी अखंडानंद ने खेतड़ी राज्य में आम लोगों के लिए शिक्षा का प्रसार करना शुरू कर दिया। इसी क्रम में उन्हें दरोगा जाति के मुखिया से यह ज्ञात हुआ कि दरोगा जाति के बच्चे पढ़ाई-लिखाई से वंचित रह जाते हैं। उन्हें पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि उनकी जाति के बच्चे जब पाँच से सात वर्ष के हो जाते हैं तब से ही वे राजा, राज-परिवार और राज कर्मचारियों की सेवा का कार्य पा लेते हैं। इस जाति का जो मुखिया था उसका भी यह मानना था कि जब पढ़ाई-लिखाई के बिना ही आजीविका की प्राप्ति हो जाती है तो फिर पढ़ने-लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इन लोगों की यह मान्यता है कि इनके परिवार के बच्चों को कोई ऊँची पदवी में नौकरी नहीं मिल सकती है। इन्हें ऊँची पदवी में लेने वाला भी कोई नहीं है। इस प्रकार का चिंतन अगर मनुष्य के मन में बना रहता है तो व्यक्ति निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है या कहा जाए कि व्यक्ति निर्माण हो ही नहीं पाएगा। शिक्षा का वितरण अगर समान रूप से नहीं होगा तो व्यक्तित्व की प्रगति सम्पन्न ही नहीं हो पाएगी। राजा अजितसिंह को इस बात की जानकारी ही नहीं है कि उनके राज्य में निवास करने वाली दरोगा जाति की जनता अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित रखती है। और इस कार्य के पीछे कहीं न कहीं राज अधिकारियों का भी जुड़ाव अवश्य है।इस विषय के बारे में जब राजा को ज्ञात हुआ और राजा ने जब मुंशी जगमोहनलाल से यह जानना चाहा कि दरोगा समाज के बच्चों को शिक्षा से वंचित क्यों रखा जाता है ? तो जगमोहनलाल का कहना था कि "यह नीति न अपनाई जाए तो राजपरिवार, ठाकुरों तथा उच्च अधिकारियों के लिए गोले-गोलियाँ कहाँ से आएँगे ? इसीलिए दरोगा जाति के लोगों को पाठशाला में प्रवेश नहीं दिया जाता। शिक्षा वर्जित है, उनके लिए। इससे पहले कि वे पढ़ने-लिखने योग्य हों, उन्हें कहीं न कहीं जोत दिया जाता है"।[15].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार यह कहा जा सकता है कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाज के सभी लोगों के बीच में व्यक्ति निर्माण को स्थापित नहीं करना चाहते हैं। अगर व्यक्ति निर्माण के दृष्टिकोण से इस तत्व को देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि राजसत्ता से जुड़े हुए

लोग यह भूल जाते हैं कि किसी समाज में केवल एक वर्ग के शिक्षित हो जाने से व्यक्ति निर्माण नहीं हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में जो व्यक्ति निर्माण होता है वह अपूर्ण व्यक्ति निर्माण है। राजा अजितसिंह इस बात को समझ जाते हैं तभी वे जगमोहनलाल की बातों को सुनकर कहते हैं कि "यह पाप है मुंशी जी ! उन्हें हम पशु बने रहने को बाध्य नहीं कर सकते"।[16]..

प्रशासन की तरफ़ से जो कानुन बनाया गया था कि दरोगा जाति के बच्चों को शिक्षा के आलोक से वंचित रखा जाएगा। इसे सदा के लिए समाप्त कर दिया गया और राजा ने उनके लिए शिक्षा का द्वार उन्मुक्त कर दिया। राजा अजितसिंह कहते हैं कि "आज से इसी क्षण से वह आज्ञा निरस्त की जा रही है। दरोगा जाति को भी अपने बच्चों को शिक्षित करने का उतना ही अधिकार होगा, जैसा कि अन्य जातियों को है। राज्य के स्कूलों को तत्काल आदेश जारी किया जाए कि वे विद्यार्थियों के प्रवेश के समय उनकी जाति के आधार पर उन्हें नहीं रोकेंगे और आज तक अनजाने में किए गए पापों की भरपाई करनी होगी। राज्य की ओर से दरोगों के पढ़ने वाले लड़कों को पेटिए का प्रबंध भी तुरंत कर दिया जाए। उनको स्कूल के समय में राज्य की ओर से भोजन भी दिया जाए कि कहीं वे भोजन के अभाव में स्कूल छोड़कर भाग ही न जाए"।[17]..

इस प्रकार राजा अजितसिंह के मन में यह विचार आता है कि अगर समाज के निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा के आलोक से वंचित रखा जाएगा तो व्यक्ति निर्माण प्रक्रिया सही रूप में कभी नहीं हो पाएगी।

स्वामीजी के व्यक्तित्व का निर्माण पूर्ण रूप से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ता चला जा रहा था। इस बात को और भी स्पष्ट रूप से इस उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "कुछ सोचकर भुवनेश्वरी नरेंद्र को सीधे स्नानागार में ले गई। नौकरनियाँ बिना कुछ सोचे-समझे असहाय सी उनके पीछे-पीछे चली आई थीं। भुवनेश्वरी ने नरेंद्र को फ़र्श पर बैठाया और उन्हें संकेत किया इसे पकड़ो। ... कहीं उससे कोई भूल तो नहीं हो गई ? किंतु फिर अपने खेल को पूरा करने का विचार कर, उसने पूरा लोटा भी नरेंद्र के सर पर उँड़ेल दिया ; और बोली देखो आकाश से गंगा आई, शिव की

जटाओं में। बोल जय-जय महादेव। बोलो शिव ! शिव बोल ! हर-हर गंगे ! बोलो शिव ! बोलो शिव ... उल्टे एक प्रकार की तन्मयता थी। उसका बोलना उल्लासमय भी था और संगीतमय भी। लगता था कि उसे कोई उन्माद हो गया है वह अभी उठकर नटराज के समान नृत्य करने लगेगा। भुवनेश्वरी के हाथ रुक गए वह मौन हो गई। उसने नौकरानियों को भी संकेत से चुप करा दिया। कहीं बिले को चिल्लाने के स्थान पर नाचने का उन्माद न हो जाए। वह धीरे से बोली, बिलेह ! अब तू पाजीपन करेगा तो महादेव तुझसे रूठ जाएँगे। नरेंद्र पर उसका तत्काल प्रभाव दिखाई पड़ा। उसने आशंकित दृष्टि से माँ की ओर देखा सच माँ ? और नहीं तो क्या ? माँ को तंग करने वाले से भगवान प्रसन्न होते हैं क्या" ?[18]..

माँ से उन्हें यह भी पता चलता है कि गणपति भले ही बहुत उत्पात किया करते थे परंतु उन्होंने कभी भी अपनी माँ पार्वती को परेशान नहीं किया। वे सर्वदा वही कार्य किया करते थे जिन्हें करने का आदेश उनकी माँ उन्हें दिया करती थी। जब स्वामीजी यह जानना चाहते हैं कि उनकी माँ को इतनी सारी बातें कैसे मालूम हैं। तब माँ उन्हें बताती है कि इन समस्त बातों को उन्होंने शास्त्रों में पढ़ा है। ये सारी तो शास्त्रों की ही बातें हैं। तब वे अपनी माँ को पुराण कथा सुनाने का आग्रह करते हैं। माँ कथा सुनाते हुए बताती है कि गणेशजी एक दिन खेल रहे थे और खेलते हुए उनकी दृष्टि एक बिल्ली पर पड़ी। अपनी चपलता से वशीभूत होकर उन्होंने उसे मारकर घायल कर दिया। कुछ देर के उपरांत जब वे अपनी माँ के पास पहुँचे तो उन्हें यह देखने पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनकी माँ के शरीर में जगह-जगह मार के निशान विद्यमान थे। उन्होंने अत्यंत ही व्यथित होकर अपनी माँ से उनके शरीर की इस दशा का कारण पूछा तो पार्वतीजी ने अपने आत्मज गणेशजी से कहा कि उनके शरीर की यह दशा गणेशजी के कारण ही हुई है। गणेशजी को अपनी माँ की इस बात को सुनकर बहुत ही दुख हुआ और उन्होंने यह जानना चाहा कि उन्होंने अपनी माँ को कब मारा है ? वे तो कभी इस प्रकार के कार्य नहीं किया करते हैं। उनकी माँ उनसे यह क्या कह रही है ? तब पार्वतीजी ने अपने पुत्र से कहा कि यह स्मरण करो कि आज खेलते हुए तुमने किसी को कोई कष्ट दिया है या नहीं। किसी को मारकर घायल किया है या नहीं। अपनी माँ की बात सुनकर गणेशजी को स्मरण हो आया कि आज खेलते हुए अपनी चपलता

के परिणाम स्वरूप उन्होंने एक बिल्ली को घायल कर दिया था। तब माँ ने उन्हें समझाते हुए जो कहा था वह ध्यान देने लायक बात है उसे उपन्यास के लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है “माँ बोली, ध्यान रखो पुत्र ! तुम किसी को भी पीड़ित कर रहे हो, तो मुझे ही पीड़ित कर रहे हो। अंततः तुम्हारे उस पाजीपन का दुष्परिणाम मुझे ही भुगतना पड़ता है”।[19].. स्वामीजी के इंग्लैंड निवासी मित्र एडवर्ड टोरंटो स्टर्डी एक बहुत ही सज्जन और सात्विक व्यक्तित्व के मनुष्य थे। हिन्दूधर्म के प्रति उनके मन में गहरी आस्था थी। उनके सात्विक व्यक्तित्व के विषय में बात करती हुई उनकी पत्नी ब्लैक स्वामी विवेकानंद से कहती है कि "मैं जानती हूँ कि ये बहुत सात्विक व्यक्ति हैं। गंभीर और विद्वान हैं”।[20]..

स्टर्डी केवल एक सात्विक व्यक्ति ही नहीं हैं बल्कि एक विनम्र व्यक्ति भी हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अगर किसी व्यक्ति के भीतर सात्विकता का गुण विद्यमान है तो उसके भीतर विनम्रता का उदय होना भी एक स्वाभाविक बात है क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। विनम्रता को तो मानव के चरित्र का अलंकार या भूषण ही माना जाता है। स्टर्डी के चरित्र के विनम्र भाव की जानकारी उनकी इसी बात से ज्ञात हो जाता है "मैं इस प्रकार के प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ। और स्वामीजी के सम्मुख तो एकदम नहीं। मैं इनकी चरण-रज के समान हूँ। कह नहीं सकता कि इनका शिष्य होने योग्य हूँ भी या नहीं"।[21]..

अपने जीवन में और साथ ही साथ समाज में और अपने राष्ट्र में एक सफल मनुष्य बनने के लिए एक मनुष्य के भीतर जिन गुणों का होना अत्यंत आवश्यक है वे सभी गुण स्टर्डी के चरित्र में देखने को मिलते हैं। उनके यही गुण उन्हें स्वामी विवेकानंद जैसे आध्यात्मिक पुरुष के निकट ले आते हैं और कहना चाहिए कि एक आध्यात्मिक पुरुष भी बनाते हैं। एडवर्ड के भीतर जो सात्विकता के गुण विद्यमान हैं उनके विषय में लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि “उन्होंने स्टर्डी को बहुत ही उद्यमी और सात्विक पुरुष पाया था”।[22]..

महाभारत कथा वाचन समाप्त होने पर बालक नरेंद्र अपनी माँ के साथ अत्यंत शांत मुद्रा में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार से वह यहाँ महाभारत की कथा सुनने के लिए यहाँ आया था। पाठ की समाप्ति के बाद भुवनेश्वरी देवी सीधे अपने कमरे में चली गई तो

बालक नरेंद्र भी उनके साथ उस कमरे में चला गया। महाभारत की कथा में उसने सुना था कि द्रौपदी का जब हस्तिनापुर की सभा में कौरव राजकुमार दू:शासन के द्वारा द्रौपदी का वस्त्र हरण किया जा रहा था तब वहाँ उपस्थित कोई भी व्यक्ति उसकी रक्षा नहीं कर पा रहा था। ऐसी परिस्थिति में उसने अपनी लाज बचाने हेतु भगवान श्री कृष्ण को पुकारा और उसकी करुण पुकार सुनकर दयानिधि भक्त-वत्सल भगवान ने स्वयं उसके लाज की रक्षा की थी तथा उसे साक्षात दर्शन भी दिया। माँ के साथ चलते हुए बालक नरेंद्र के मन में कदाचित इस बात की सत्यता को जाँचने की इच्छा जाग उठी होगी अतः उन्होंने माँ से प्रश्न किया "माँ क्या पुकारने पर भगवान सचमुच आ जाते हैं" ?[23]..

अपने आत्मज की इस जिज्ञासा को देखकर भुवनेश्वरी देवी को अत्यंत आश्चर्य हुआ। अपने पुत्र की बात को सुनकर माता भुवनेश्वरी देवी के मन में जो विचार उत्पन्न हुआ उसे लेखक नरेंद्र ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "भुवनेश्वरी ने नरेंद्र की ओर देखा : यह बच्चा सचमुच असाधारण था ! इसके मन में प्रश्न उठते थे। इसके पास अन्वेषक दृष्टि थी और यह सत्य की तह तक जाना चाहता था"।[24].. बेटे की बातों को सुनकर माता का कहना था कि पुराणों में तो यही बात बताई गई है। इतना ही ही नहीं उन्होंने अपनी माँ से यह भी जानना चाहा था कि यह बात तो ठीक है कि पुराणों में भगवान के आगमन की बात है परंतु मानव के जीवन में भी क्या वे आते हैं ? तब माता का कहना था कि अगर भक्त की पुकार सच्ची होती है तो मानव के जीवन में भी भगवान का आगमन अवश्य ही होता है। लेखक ने भुवनेश्वरी की बातों का वर्णन इन शब्दों में किया है "हाँ पुत्र जीवन में भी वे आते हैं। भुवनेश्वरी बोली, किंतु पुकार सच्ची होनी चाहिए"।[25].. अपनी माँ की बात को सुनकर छोटे से बालक नरेंद्र ने अपनी माँ से जो कहा था वह ध्यान देने लायक़ बात है कि "तुमने कभी उन्हें पुकारा है माँ, वे आए" ?[26].. माँ का कहना था कि यह बात तो सत्य है कि उन्होंने भी भगवान को पुकारा था परंतु उन्होंने तो भगवान को अपने संकट के समय नहीं पुकारा था बल्कि अपने स्वार्थ के कारण उन्हें पुकारा था और जहाँ तक उनके आने की बात है वे स्वयं तो आए नहीं परंतु उन्होंने तुम्हें मेरे पास भेज दिया। बालक नरेंद्र ने जब यह जानना चाहा

कि ऐसा क्यों हुआ और उसकी माँ ने भगवान से किस वस्तु की माँग की थी ? तो माँ ने यह बताया कि उन्होंने तो भगवान को प्राप्त करने के लिए भगवान को नहीं पुकारा था बल्कि उन्हें तो अपने लिए एक पुत्र की आवश्यकता थी और उन्होंने पुत्र की माँग की अतः ईश्वर ने स्वयं न आकर पुत्र के रूप में तुम्हें भेज दिया। अपनी माँ की इस प्रकार की विचारधारा को सुनकर बालक नरेंद्र ने अपनी माँ से जो कुछ कहा वह सर्वाधिक ध्यान देने लायक़ बात है। बालक नरेंद्र की बात लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "तुमने भूल की माँ ! नरेंद्र निष्कंप स्वर में बोला, तुम्हें उनके दर्शनों की याचना करनी चाहिए थी। पुत्र तो सबके होते हैं, किंतु भगवान के दर्शन किसने किए हैं" ?[27].. अपने पुत्र के इस प्रकार की विचारधारा को सुनकर स्वामी विवेकानंद की माता भुवनेश्वरी देवी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना छोटा सा बालक इतना गहन चिंतन करता है। वे आश्चर्य से स्तब्ध होकर अपने पुत्र को निहारती रह गईं।

जब महाभारत की कथा का वाचन हो रहा था तब एकदम शांत रहकर महाभारत की कथा सुनना भी स्वामी विवेकानंद के आध्यात्मिक व्यक्तित्व को दर्शाता है। साथ ही साथ उनका व्यक्तित्व प्रयोगात्मक भी रहा है यह उनके इस कथन से ही ज्ञात होता है जब उनकी माँ भुवनेश्वरी देवी उनसे कहती है कि "पुराणों में तो यह कहा जाता है कि सच्चे मन से पुकारने से मानव के जीवन में भी भगवान का आगमन अवश्य होता है। तब स्वामीजी ने अपनी माँ से कहा था कि "जीवन में क्या होता है माँ" ?[28].. अर्थात् वे एक अंधविश्वासी व्यक्ति नहीं थे बल्कि किसी भी विषय को प्रयोगात्मक रूप से विश्वास किया करते थे। एक बार उनके परिवार में रामकथा का वाचन हो रहा था। कथावचक महोदय रामकथा सुनाते हुए हनुमानजी के विषय में बता रहे थे। हनुमानजी के विषय में बताते हुए कथा वाचक महोदय ने यह बताया था कि जितने फल हैं उनमें से हनुमानजी को केला सर्वाधिक प्रिय है। बालक नरेंद्र के मन में यह विचार आया कि भला ऐसा क्या कारण हो सकता है कि आम जैसे इतने मीठे और सुंदर फल के रहते हुए रामभक्त हनुमान को केला ही प्रिय है ? ऐसे कई सवाल उनके मन में उठे। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "पंडितजी ने केले के प्रति हनुमानजी के मोह का कुछ इस प्रकार वर्णन किया था कि नरेंद्र अपना दमन नहीं कर

पाया। कथावाचक को बीच में ही रोककर उसने पूछा, पण्डितजी ! क्या हनुमानजी को केला सारे फलों में अधिक प्रिय था ? क्या उन्हें आम अच्छा नहीं लगता था ? .... कुटिया के आगे केले तो पीछे भी केले। द्वार खोलें तो केला ही दिखाई दे। गवाक्ष से देखें तो आकाश के बदले केला ही सुझाई दे। वे केले के इतने निकट रहते हैं कि जब हाथ बढ़ाया केला तोड़ा और खा लिया। नरेंद्र को अन्य सूचनाओं में कोई रूचि नहीं थी। उसका मन तो इसी बात पर अटक गया था कि हनुमानजी केले के बगीचे में रहते हैं। उसकी उत्सुकता अपनी चरम सीमा पर थी। यह पहला अवसर था कि उसे किसी देवी-देवता के आवास के इतने निश्चित और इतने निकट होने का आभास मिला था। यदि हनुमानजी केले के बगीचे में रहते हैं, तो उनसे मिला भी जा सकता है। वह अपनी उत्कंठा से बोला, ... अनेक जिज्ञासाओं का समाधान भी उनसे पाना था। यदि विवाह इतनी ही बुरी चीज है जितनी कि साईस बताता है तो सर्वज्ञ होते हुए भी श्री राम ने विवाह क्यों किया ? और भगवान के अनन्य भक्त होते हुए हनुमान ब्रह्मचारी क्यों रहे ? एक ब्रह्मचारी एक विवाहित स्त्री-पुरुष की आराधना कैसे कर सकता है ? उन्होंने अपने गुरु की ही परम्परा का पालन क्यों नहीं किया"।[29]..

कथावाचक महोदय की बातों को सुनकर स्वामीजी हनुमानजी से मिलने अपने घर के निकट में स्थित केले के बगीचे में गए और एक लम्बे समय तक वहाँ बैठे रहे। यहाँ तक कि उन्होंने हनुमानजी से मिलने के लिए उनका ध्यान भी किया परंतु उन्हें हनुमानजी के दर्शन ही नहीं हुए। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह थी कि कथावाचक महोदय ने केले के बगीचे में हनुमानजी की कुटिया के होने की बात कही थी लेकिन बालक नरेंद्र को तो दूर-दूर तक उस कदली-वन में कहीं भी हनुमानजी की कुटिया दिखाई ही नहीं दिया। छोटे से बालक नरेंद्र को ऐसा कोई संकेत ही नहीं मिल रहा था जिससे कि उन्हें यह समझ में आता कि श्री रामचंद्रजी के एकनिष्ठ भक्त हनुमान वहाँ निवास करते हों। हनुमानजी से मिलने के लिए इंतजार करते हुए जब बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया तो उनका मन निराश हो गया। बालक विवेकानंद ने अपनी माता भुवनेश्वरी से जो कुछ कहा था उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "घर पहुँचकर वह सीधा माँ के पास पहुँचा। और था

ही कौन जिसके सम्मुख वह अपने मन की पीड़ा प्रकट करता। उसे देखते ही भुवनेश्वरी समझ गई कि उसके साथ कुछ बहुत ही प्रतिकूल घट गया है। उसने पूछा, क्या हुआ बिलेह, तू इतना दुखी क्यों है ? नरेंद्र ने पहले तो अपनी आँखों से ही अपनी बात कहनी चाही किंतु इतना आत्मदमन कर नहीं सका। उसके मन में देर से जमा हुआ एक वाक्य अनायास ही मुख से फिसल गया लोग बहुत झूठे हैं माँ"।[30]..

भुवनेश्वरी ने जब अपने पुत्र से यह जानना चाहा कि ऐसा कौन है जो उनके पुत्र के साथ मिथ्या वचन बोलता है। अपनी माँ की बात सुनकर बालक नरेंद्र ने जो कुछ कहा उसका वर्णन करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नरेंद्र अत्यंत कटुता के साथ बोला, कथावाचक महाशय ! सुनाते हैं भगवान की कथा और एकदम झूठ बोलते हैं"।[31].. अपने आत्मज के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर भुवनेश्वरी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि उनका पुत्र अगर यह कहता कि कोई बालक उससे झूठ बोल रहा है तो कोई और बात होती। लेकिन वह तो सीधे कथावाचक महोदय पर ही आरोप लगा रहा है।

अगर व्यक्ति निर्माण करना है चाहे किसी भी देश के नागरिक हों, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा के यथोचित वितरण के बिना लोगों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाएगा। चाहे वह स्त्री हो या फिर पुरुष हो क्योंकि दोनों देश और समाज की महत्वपूर्ण इकाई हैं। कदाचित यही कारण है कि उन्नीसवीं शताब्दी के इंग्लैंड में स्त्री वहाँ की बुद्धिजीवी महिलाओं ने विशेष रूप से लंदन की श्रीमती हेनेरिटा मूलर जो लॉर्ड जार्ज रिपन की भार्या थीं उन्होंने और लेडी इसाबेल मार्गेसन आदि ने मिलकर महिलाओं को शिक्षित करने के लिए सीसेम क्लब' नामक एक संगठन का निर्माण किया था। जिसका मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षित करना था। अंग्रेज समाज की जो स्त्रियाँ शिक्षित नहीं हैं उन्हें एक शिक्षित व्यक्ति के रूप में निर्मित करना। स्वामी विवेकानंद जब लेडी इसाबेल से सीसेम क्लब के बारे में पूछते हैं तो वह उन्हें बताती हैं कि "यह महिलाओं द्वारा स्थापित एक क्लब है, जिसका मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा का प्रसार करना है"।[32].. उन्नीसवीं शताब्दी की लंदन की अंग्रेज महिलाओं ने समझ लिया था कि देश की महिलाओं में अगर शिक्षा का प्रचार और प्रसार समान रूप से या कहा जाए कि सही रूप से जब तक नहीं होगा तब तक

महिलाओं के भीतर का जो व्यक्ति निर्माण है वह सुचारू रूप से नहीं हो पाएगा। अतः लंदन की बुद्धिजीवी महिलाओं ने आपस में मिलकर इस क्लब का निर्माण किया।

स्वामीजी जब लंदन में थे तब प्रोफ़ेसर रॉबर्ट फ़्रेज़र एक बहुत ही विद्वान और आध्यात्मिक व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति थे। इनका जन्म भी भारत में ही हुआ था और वे प्राच्य विद्या के ज्ञाता भी थे। वे कभी भी स्वामी की कक्षाओं में आने में कोई संकोच नहीं करते थे। यह सब उनके भीतर में निहित आध्यात्मिकता का ही परिणाम है। स्वामीजी के जीवन में जॉन जेसिया गुडविन का आगमन भी एक आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में ही होता है। वह एक ऐसा व्यक्ति था जो अमरीकी अंग्रेज़ी भी समझ लेता था, इंग्लैंड की अंग्रेज़ी भी समझता था। वह तो ख़ैर उसकी अपनी मातृभाषा ही थी। वह संस्कृत भाषा का भी बहुत अच्छा जानकार था। यहाँ संस्कृत से अभिप्राय वैदिक संस्कृत से है। वह अद्वैत वेदांत की सारी शब्दावली भी बड़ी ही आसानी से समझ लेता था। गुडविन का व्यक्तित्व स्वार्थहीन था। उसका व्यक्तित्व हिंदू ऋषि-मुनियों के समान सात्विक और आध्यात्मिक था। उसके व्यक्तित्व में वेदांत का प्रभाव बड़ा गहरा था। वे सम्पूर्ण रूप से वेदांत आंदोलन में डूब चुके थे। गुडवीन के आध्यात्मिक व्यक्तित्व को पुस्तक में वर्णित एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है जो इस प्रकार है लेखक नरेंद्र कोहली ने लिखा है कि “गुडविन आकंठ वेदांत आंदोलन में डूब गया था। उसे बार-बार स्वामी के शब्द याद आ रहे थे। उसे लग रहा था कि उसका लक्ष्य उसे मिल गया था। प्रभु स्वयं ही उसका हाथ पकड़कर उसे यहाँ ले आए”।[33].. यहाँ गुडविन के व्यक्तित्व में निहित स्वार्थहीनता की बात की गयी है। इस बात को भी पुस्तक में वर्णित एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। “सप्ताह पूरा हो गया तो मिस फ़िलिप ने उसे बुलाकर उसके हाथों में उसका वेतन पकड़ा दिया। हाथ में लिफ़ाफ़ा पकड़े गुडविन मिस फ़िलिप की ओर देखता रह गया। क्या बात है ? मैं वेदांत के काम के लिए वेतन लूँ। स्वामी के काम के लिए”।[34].. बात जहाँ तक गुडविन की है वह बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। ऐसी बात नहीं थी कि वह न केवल स्वामीजी की भाषा या अद्वैत की शब्दावली ही समझता था बल्कि वह एक अच्छा आशुलिपिक भी था। वह एक बहुत अच्छा टाइपिस्ट भी था। इतना ही नहीं वह एक ऐसा व्यक्ति भी था जो टंकण करते

समय स्वामीजी की वाणी की गतिशीलता को भी बड़ी ही सहजता से पकड़ सकता था। स्वामी विवेकानंद ने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि के माध्यम से एक ही नजर में यह पहचान लिया था कि गुडविन एक आध्यात्मिक व्यक्ति है। उन्होंने उसके मन में निहित सात्विक वृत्ति को भी पहचान लिया था। यह भी उन्होंने समझ लिया था गुडवीन उनकी बातों को आशुलिपि के माध्यम से लिपिबद्ध करने के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति है। स्वामीजी ने अपनी दिव्य दृष्टि के माध्यम से यह भी देख लिया था कि इस व्यक्ति का वास्तविक उद्देश्य क्या है। ऐसी बात नहीं है कि यह व्यक्ति केवल अपने लिए आजीविका की ही तलाश कर रहा है बल्कि इस मनुष्य जीवन में वास्तविक शांति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है वह इस बात की भी तलाश कर रहा है। कदाचित यही कारण है कि स्वामीजी ने उससे यह पुछा था कि क्या वह केवल अपनी आजीविका की ही तलाश कर रहा है ? उसे स्वामीजी के इस प्रश्न को सुनकर तनिक आश्चर्य हुआ कि यह हिंदू सन्यासी इतने विश्वास के साथ इतना सब कुछ कैसे कह सकता है ? उससे स्वामीजी ने कहा कि वह अपने पिछले जन्मों का जो सूत्र है उसकी खोज कर रहा है और जब तक उसे उसके पिछले जन्म का सूत्र नहीं मिल पाएगा तब तक उसका मन शांत ही नहीं हो पाएगा। उसके साथ स्वामीजी की एक लम्बी बातचीत हुई जिसमें उसने स्वामीजी को बताया कि वह तो ईसाई है और ईसाईधर्म में पूर्व जन्म के तत्व को स्वीकार ही नहीं किया जाता है। तब स्वामीजी ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि उनका कहना था कि वह अपने पूर्व जन्म के सूत्र को खोज रहा है। यह बात सत्य है कि ईसाई धर्म में पूर्व जन्म को स्वीकार नहीं किया जाता है। लेकिन इस संसार का कोई भी व्यक्ति क्यों न हो वह अपनी चेतना को जानता ही है। अतः गुडविन भी अपनी चेतना को जानता है लेकिन वह अपनी आत्मा को नहीं जानता है। आत्मा ही वह वस्तु है जो अपने पिछले जन्मों का सूत्र है उसे तलाशती रहती है। अब यहाँ बात आती है जिसे अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि अगर गुडविन एक आध्यात्मिक पुरुष न होता तो उसने जब स्वामीजी से यह पूछा कि वह तो आत्मा को जानता ही नहीं है तब उसे वे भला ऐसा क्यों कहते कि "जान जाओगे। समय आने दो"।[35].. कालांतर में गुडविन स्वामीजी का एक

एकनिष्ठ भक्त बन गया। यह गुडविन के भीतर में निहित आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति का ही परिणाम है।

संसार के किसी भी देश में निवास करने वाला व्यक्ति हो वह चाहे किसी भी वय का मनुष्य ही क्यों न हो सात्विकता ही उसके चरित्र का प्रधान गुण है जिसके माध्यम से व्यक्ति दिव्य आनंद का अनुभव करता है। कहा जाता है कि संगीत स्वर्ग की वस्तु होती है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि संगीत को स्वर्गीय वस्तु के रूप में परिवर्तित करने हेतु मन की सात्विकता की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जो गुण सेरा थार्फ में था। अपने सात्विक गुणों के कारण ही वह ओलीबुल के संगीत के दिव्य भाव को पहचान पायी थी। अगर व्यक्ति के मन में लोभ और लालसा का आवरण चढ़ा होगा तो वह सात्विक वस्तु की पहचान ही नहीं कर पाएगा। अगर आध्यात्मिक आनंद की बात की जाए तो इसे भी वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जिसके मन में सरलता और सात्विकता की भावना समाहित हो। आगे चलकर स्वामी विवेकानंद का सेरा के साथ परिचय उनकी सात्विकता के कारण ही हुआ। व्यक्ति निर्माण से अभिप्राय मानव के भीतर के व्यक्तित्व को सुचारू रूप से निर्मित करना। एक सकरात्मक व्यक्तित्व का निर्माण करना जिससे यह जो मनुष्य जीवन है वह सफल हो सके। यह सेरा थार्फ के सकरात्मक और सात्विक व्यक्तित्व का ही प्रभाव था जिसके परिणाम स्वरूप उसने वृद्ध ओलीबुल के वास्तविक स्वरूप जो सात्विकता की प्रतिमूर्ति थी उसे पहचान लिया था। यह एक वास्तविक यथार्थ है कि कोई भी व्यक्ति यदि वास्तव में सज्जन है तो उसका अंतर्मन अपनी एक ही दृष्टि में वास्तविक सज्जन पुरुष की पहचान कर सकता है। जहाँ तक सेरा थार्फ की बात है वह स्वयं सज्जन थी। अतः उसने अपनी निजी सज्जनता और सात्विकता के माध्यम से एक ही बार देखकर ओलीबुल के सज्जन व्यक्तित्व को पहचान लिया था। इतना ही नहीं ओलीबुल ने भी केवल एक ही बार में उसके भीतर में निहित सात्विकता के व्यक्तित्व को पहचान लिया था। ओलीबुल को देखकर सेरा को ऐसा अनुभव हुआ कि अब उसे इस सात्विक वातावरण में ही निवास करना चाहिए और अपनी प्राचीन पृथ्वी की ओर नहीं लौटना चाहिए। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि “आज ओलीबुल का वायलन सुनकर उसका मन कैसा तो हो रहा था, जैसे उसे अपना-सा जीवन मिल गया हो। उसे लग रहा था कि वह अपने सप्तलोक में पहुँच गई है ; और वह

यहाँ से वापस उस पृथ्वी पर लौटना नहीं चाहती। उसकी एकमात्र इच्छा थी कि यही उसका स्थायी घर बस जाए। घर ! ऐसा घर जिसमें उसकी कल्पना अपने पंख पसारकर अपना संसार बसा सके। उसका मन अपनी पूर्णता पा सके। जिसमें किसी का कोई हस्तक्षेप न हो। किसी की कोई योजना न हो। किसी के मलिन हाथ उस और न बढ़ें। उसमें किसी और की कल्पना का प्रवेश तक न हो। वह उसका हो, उसका अपना, निजी और आत्मीय आत्मा का अंग सारा का सारा"।[36].. इस गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भी नारी अपने सात्विक व्यक्तित्व के माध्यम से अपने वास्तविक जीवनसाथी को पहचान सकती है। सेरा को जो लग रहा था कि वह जिस संगीत की धरती पर आ पहुँची है अब यहाँ से उसे कभी वापस लौटकर नहीं जाना चाहिए यह उसके सात्विक अंतर्मन की ही पुकार थी। अगर व्यक्ति का मन सात्विक है और वह ईश्वर के प्रेम में डूबा हुआ रहता है तो ईश्वर ही उसे जीवनसाथी के भेंट करवा देते हैं यदि उन्हें ऐसा लगता है कि इस व्यक्ति को विवाह की आवश्यकता है। ओलीबुल देखकर ही सेरा उन्हें अपना जीवन साथी बनाने की परिकल्पना करते हैं। लेखक लिखते हैं कि "वहाँ उसने यह निश्चय किया कि एक दिन वह ओलीबुल की पत्नी बनेगी"।[37]..

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 15/11/2020 को लेखक नरेंद्र कोहली का मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 10

3 15/11/2021 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 41

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 81

6 दिनांक 15/11/2020 रविवार के दिन लेखक से मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 28

[8] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 31

[9] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 32

[10] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 42

[11] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 23

[12] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 24

[13] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 24

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 405

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406, 407

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 16

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 16

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 37

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 37

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 41

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

[26] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

[27] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 39

[28] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

[29] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 48, 49

[30] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 50

[31] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 50

[32] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 108

[33] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 175

[34] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 175

[35] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 169

[36] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 6

[37] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 6

ii. समाज निर्माण : पूर्व एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य

समाज किसी भी राष्ट्र या जाति अथवा धर्म की एक महत्वपूर्ण ईकाई है। समाज में किसी भी जाति या धर्म से जुड़े हुए लोगों की अपनी रीति नीति समाहित होती है। बात अगर समाज निर्माण की हो तो यह ज्ञात होता है कि किसी भी समाज के सभी स्तरों की जनता का सर्व स्तरीय विकास। विकास के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की कोताही नहीं की जानी चाहिए।भारत में सरकार के द्वारा समाज की प्रगति के लिए कई प्रकार की योजनाओं का संचालन किया जा रहा है जिनमें से एक योजना है 'अंतोदय योजना' जिसका तात्पर्य है समाज के अंतिम पायदान पर खड़े हुए व्यक्ति का भी कल्याण हो। अर्थात् राष्ट्र में जनता के हित में विकास की जो बयार संचालित हो रही है उसकी पहुँच समाज के उच्च से उच्च तक और निम्न से निम्न तक के व्यक्ति को भी प्राप्त हो।समाज का कोई भी वर्ग उस प्रगति की गतिशीलता से दूर न रह सके। सम्पूर्ण समाज का कोई भी वर्ग उससे अछूता न रहे। समाज निर्माण के विषय में स्वयं लेखक नरेंद्र कोहली का कहना है कि "समाज निर्माण समाज के चरित्र निर्माण है"।[1]..

अगर समाज की बात की जाए तो भारत में कई प्रकार के समाज हैं जैसे भाषा के दृष्टिकोण से, बंगाली समाज, पंजाबी समाज, मलयाली समाज, हिंदी भाषी समाज आदि। जाति के आधार पर ब्राह्मण समाज, क्षत्रिय समाज, यादव समाज निषाद समाज आदि। धर्म के आधार पर हिंदू समाज, ईसाई समाज, मुस्लिम समाज, सिख समाज, बौद्ध समाज, जैन समाज आदि। इनके अपने-अपने उपसमाज भी हैं। बात जब समाज निर्माण की आती है तो इसका अभिप्राय है इन विभिन्न मान्यताओं के आधार पर निर्मित समाज का सर्व स्तरीय विकास।। जिस समाज का विकास करना है उस समाज की जो भाषा है उस भाषा के विकास की बात सोचनी चाहिए। शिक्षा किसी समाज को सुचारू रूप से निर्मित करने के लिए एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। किसी व्यक्ति को अगर अपने समाज का निर्माण करना है तो उसे अपने समाज के लोगों की मातृभाषा का ज्ञान होना चाहिए। उसमें उसे शिक्षा ग्रहण करना चाहिए क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति अपनी भाषा की जानकारी प्राप्त नहीं करेगा तब तक उसे अपने समाज के लोगों की जो समस्याएँ हैं उनकी जानकारी नहीं हो पाएगी,

वह लोगों के बीच संवाद स्थापित नहीं कर पाएगा। जब कोई अपने समाज को जान ही नहीं पाएगा तो वह उसका निर्माण और विकास कैसे कर पाएगा। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा को महत्व दिया है। उन्होंने धर्म की भाषा में शिक्षा प्राप्त करने को भी महत्व दिया है क्योंकि व्यक्ति जब अपने समाज की भाषा और उस भाषा को जानेगा जिसमें उसके धार्मिक ग्रंथों को रचा गया है तो ही वह अपने समाज का निर्माण एक बहु स्तरीय विकसित समाज के रूप में कर पाएगा स्वामीजी बार-बार कहा करते थे कि "आत्म स्वाभिमान इसमें है कि पहले अपनेआप को जानो, अपने समाज को जानो, अपने देश को जानो"।[2]..

इस संसार के किसी भी मनुष्य को चाहे वह किसी भी देश या प्रदेश का हो, चाहे वह किसी जाति या धर्म का ही क्यों न हो अगर वह अपने समाज का निर्माण सुचारू रूप से करना चाहता है तो सर्वप्रथम उस व्यक्ति को अपने निजी समाज की भाषा का बोध होना चाहिए क्योंकि जो व्यक्ति अपनी ही भाषा से अनजान होगा वह अपने समाज की संस्कृति से भी अज्ञात होगा और ज़ाहिर सी बात है कि किसी समाज से अनजान रहकर उसका नव निर्माण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए स्वामी विवेकानंद ने अपने अध्यापक से कहा था कि "जिस समाज की भाषा से हम अपरिचित रहते हैं, उस समाज की संस्कृति और समस्याओं से अपरिचित रह जाते हैं। न उस साहित्य को समझते हैं न उसकी कलाओं को, और न उसके धर्म को"।[3].. लेखक नरेंद्र कोहली ने अनुसार "जब मेरे अपने घर में इतना कुछ है तो मैं परदेश क्यों जाऊँगा"।[4].. अगर कोई व्यक्ति अपने समाज और उससे जुड़ी संस्कृति का यदि बड़ी गहराई से अनुशीलन करता है, मनन करता है या चिंतन करता है तो उसे अन्य संस्कृतियों का ज्ञान हो जाता है। समाज निर्माण के क्षेत्र में स्वामीजी एक और जहाँ अपनी मातृभाषा को महत्व देते हैं वहीं दूसरी ओर समाज के निर्माण के लिए संस्कृत को भी महत्व देते हैं। संस्कृत हिंदुओं की धार्मिक भाषा है। यह सनातन धर्म की आध्यात्मिक पहचान है। चारों वेद, श्रीमद् भगवत गीता, समस्त पुराण देवभाषा संस्कृत लिखे गए हैं। अतः अगर संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं होगा तो हिंदू समाज और उसकी संस्कृति को जाना नहीं जा सकेगा।

स्वामीजी के मन में एक और विचार आता है कि योगेन्द्रबाला जो उनकी छोटी बहन थी जिसकी वे रक्षा नहीं कर पाए लेकिन समाज को सुचारू रूप से निर्मित करने हेतु महिलाओं को समाज के अत्याचार से बचाना होगा साथ ही उन्हें शिक्षित भी करना होगा। जिस हादसे का शिकार स्वामीजी की छोटी बहन को होना पड़ा वह केवल उनकी बहन का ही कष्ट नहीं था। यह केवल उसकी ही कहानी नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के समस्त नारियों की कहानी है। उनके मन में यह विचार आया कि "बिना शिक्षा के नारी का उद्धार नहीं हो सकता था"।[5].. लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार "नारी शिक्षा के लिए वहीं से वो मुड़े हैं"।[6]..

रोगियों की चिकित्सा के माध्यम से भी समाज निर्माण और समाज की सेवा की जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह ईश्वर की सेवा है। स्वामीजी कहते हैं कि "मेरी सेवा आप कर चुके डॉक्टर साहब ! अब आप रोगियों की सेवा कीजिए। किसी को शारीरिक कष्ट से मुक्ति दिलाना भी ईश्वर की उपासना है। वह साधु-सेवा से बड़ा काम है"।[7].. समाज निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि रोगी का ईलाज करते हुए एक डॉक्टर समाज का निर्माण ही कर रहा है।

भारत एक आध्यात्मिक देश है। अतः आध्यात्मिकता के माध्यम से भी समाज निर्माण किया जा सकता है। समाज निर्माण हेतु मन की शुद्धता आवश्यक है। लेखक कोहली के शब्दों में कहा जाए तो "समाज निर्माण समाज के चरित्र का निर्माण"।[8]..

अगर कोई पढ़-लिखकर नगर की ओर चला जाता है और वहाँ अपने अर्जित ज्ञान का वितरण करता है तो इससे समाज का एक हिस्सा जोकि शहर में निवास करता है केवल वहीं वर्ग विकसित होगा जबकि ग्रामीण समाज शिक्षा के आलोक से वंचित रह जाएगा। भारत को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है एक ग्रामीण भारत और दूसरा है नगरीय भारत। जब दोनों प्रांतों का समाज विकिसित होगा तब यह कहा जा सकता है कि समाज निर्माण सटीक प्रकार से हो रहा है। शिक्षा ग्रहण कर कुछ ऐसा प्रयास करना चाहिए ताकि दोनों ओर के निवासियों का विकास सही रूप से हो सके। कृषि कार्य के माध्यम से समाज का निर्माण सुनियोजित ढंग से किया जा सकता है। बात यह है कि समाज में जो वर्ग कृषि कार्य में दक्ष हो साथ ही साथ समाज का ऐसा व्यक्ति जिसे वैज्ञानिक ढंग से कृषि कार्य करने का

ज्ञान हो उसे ही कृषि कार्य में लगाना चाहिए। समाज के नव निर्माण के लिए सभी वर्गों को संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्वामीजी की मान्यता थी कि अगर हिंदुओं को अपने देश का इतिहास स्वयं ही लिपिबद्ध करना है तो वेदों और पुराणों तथा उपनिषदों का गहराई से अध्ययन करना होगा क्योंकि भारत के इतिहास के तथ्य इन ग्रंथों में समाहित हैं। स्वामीजी के अनुसार "समाज की मर्यादा की रक्षा करना गृहस्थ का धर्म है"।[9]..

यहाँ यह भी बताया गया है कि अगर समाज को एक समृद्धशाली समाज के रूप में निर्मित करना है तो ब्राह्मण युवक की केवल उपनयन संस्कार में ही सहायता करने से नहीं होगा बल्कि उपनयन की सहायता के साथ-साथ उस बालक को शिक्षा प्राप्त करने में भी समाज के लोगों को सहायता करनी होगी। "कितना अच्छा हो कि तुम सब मिलकर संस्कृत का अध्ययन करो। प्राणायाम का अभ्यास करो। अपनी परम्पराओं का पालन करो। समाज के असहाय और दुर्बल लोगों का दायित्व सम्भालो। सबकी सेवा करो। धर्म का मर्म और कहीं नहीं, स्वयं अच्छे बनने और अच्छे कर्म करने में ही है"।[10]..

हिंदू समाज के निर्माण की बात की जाए तो यह वेद, पुराण और उपनिषद आदि के द्वारा ही किया जा सकता है। वेदों,पुराणों और उपनिषदों के आधार पर निर्मित समाज ही वास्तविक हिंदू समाज व्यवस्था है। स्वामीजी के शब्दों में "हमने अनेक महान ग्रंथों को पढ़ना बंद कर दिया है। और तो और लोगों ने रामायण, महाभारत और भागवत से भी एक दूरी बना ली है। यह कोई शुभ लक्षण नहीं है। इससे हिंदुओं में बहुत सारे विभाजन हो जाएँगे"।[11]..

स्वामी विवेकानंद खेतड़ी राज्य में वैज्ञानिक शिक्षा दिलाना चाहते हैं। अगर समाज का नव निर्माण करना है तो प्रजा को शिक्षित करना होगा। अगर प्रजा को भौतिक विज्ञान के माध्यम से शिक्षित करना है तो स्वयं राजा को इस विषय में ज्ञान होना चाहिए। यदि अपने समाज का नव निर्माण करना है तो आज का जो समकालीन ज्ञान है उसकी विधिवत जानकारी होनी चाहिए क्योंकि स्वयं अगर समकालीन विषय के बारे में ज्ञान नहीं होगा तो एक सुशिक्षित और दक्ष समाज का निर्माण करना सम्भव नहीं होगा। स्वामीजी ने खेतड़ी नरेश के राजपण्डित नारायणदत्त शास्त्री से कहा कि "यह सब प्रजा के लिए है पण्डितजी !

राजा को इन विषयों का ज्ञान नहीं होगा, तो वह प्रजा को इनका ज्ञान कैसे कराएगा ? राजा को सूचना होनी चाहिए कि आज के संसार में ज्ञान की दिशा क्या है ? उन्हें बाहरी और भीतरी दोनों संसारों को जानना है। भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान में सामंजस्य स्थापित करना है। राजा अनपढ़ होगा तो प्रजा की शिक्षा का प्रबंध कैसे करेगा" ?[12]..

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अगर भारतवर्ष में मनुष्य को समाज का नव निर्माण करना है तो भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों को एकसाथ मिलाने की आवश्यकता है। अपनी भाषा और संस्कृति को जाने और समझे बिना लोकगीतों से अपना परिचय स्थापित किया ही नहीं जा सकता। स्वामी विवेकानंद ने श्यामजी कृष्ण वर्मा से बात करते कहा कि "भाव ही आत्मा है"।[13].. समाज की आत्मा या समाज का जो प्राण है वह किस वस्तु में निहित है। वह है समाज की संस्कृति, भाषा और उसके लोकगीतों में। लोकगीतों में लोकसमाज की सरलता और अपनत्व की झलक दिखाई देती है। अगर समाज का नव निर्माण करना है तो लोककला की रक्षा इसलिए करनी चाहिए क्योंकि उसमें सम्पूर्ण जाति की आत्मा निहित होती है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार "कला के मूल में व्यक्तित्व कलाकार का होता है, किंतु आत्मा तो उस जाति की ही होती है"।[14].. अगर व्यक्ति एक समृद्धशाली समाज का निर्माण करना चाहता है तो उसका यह परम कर्तव्य है कि अपने समाज की जो लोक कलाएँ हैं उन्हें अपने सामाजिक जीवन से कभी भी विनष्ट न होने दें बल्कि उन्हें वह समाजिक जीवन में यथावत बनाए रखें। समाज निर्माण के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी भावना भी होनी चाहिए। कोई अत्याचारी है या दुराचारी है तो उसके साथ संघर्ष अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि भारतीय चिंतन विशेष रूप से हिंदू चिंतन के अनुसार यह तो कहा गया है कि अहिंसा धर्म है लेकिन साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि हिंसा भी धर्म है। जिस प्रकार किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा की एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है उसी प्रकार किसी समाज के निर्माण में भी यथोचित शिक्षा की एक बड़ी भूमिका होती है। वडोडरा के राजा सायाजी राव गायकवाड़ ने अपने राज्य के लोगों के लिए शिक्षा का जो प्रबंध किया था उसे समाज निर्माण के दृष्टिकोण से भी देखा जाना

चाहिए क्योंकि समाज तो राष्ट्र का ही अंग है। अगर समाज का कोई भी वर्ग अशिक्षित रहेगा तो राष्ट्र का विकास या उसका निर्माण सुचारू रूप से नहीं होगा। समाज के किसी वर्ग को शिक्षा से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए, तभी समाज का विकास सुचारू रूप से हो पाएगा। कदाचित यहीं कारण है कि सायाजी ने समाज के किसी वर्ग को शिक्षा के आलोक से वंचित नहीं किया। चाहे वे स्त्री हों, पुरुष हों, उच्च जातियाँ हों या फिर निम्न जातियाँ हों। उन्होंने अपने राज्य की प्रजा समाज को शिक्षित करने के लिए पुस्तकालय आंदोलन भी चलाया था। ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने केवल नगरीय समाज को ही शिक्षित करने का प्रयास किया है बल्कि नगर के साथ ही साथ ग्रामीण जनता को भी शिक्षित करने का प्रयास किया, क्योंकि अगर ग्रामीण समाज का भी निर्माण करना है तो ग्रामीण जनता को भी शिक्षा के मार्ग में लाना होगा। सायाजी समाज निर्माण के लिए आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के साथ ही साथ ओद्योगिक शिक्षा के महत्व को समझते थे। परिणाम स्वरूप उन्होंने अपने प्रजा समाज को शिक्षित करने के लिए अपने राज्य में ओद्योगिक संस्थान की स्थापना की थी। समाज का अगर निर्माण करना है तो समाज के लोगों को केवल शिक्षित करने से ही नहीं होगा बल्कि शिक्षा के साथ-साथ उनके लिए उचित चिकित्सा का भी प्रबंध करना होगा ताकि अगर जनता रोगग्रस्त हो तो उसे उचित चिकित्सा की प्राप्ति हो सके। समाज के लोग अगर स्वस्थ्य ही नहीं रहेंगे तो समाज का निर्माण किस प्रकार हो पाएगा ? समाज में अगर आधुनिक शिक्षा का प्रसार नहीं हो पाएगा तो कोई भी इस सम्पूर्ण विश्व के साथ होने वाली प्रगति के साथ स्वयं को कभी भी सुचारू रूप संचालित नहीं कर पाएगा। कदाचित यही कारण है कि सायाजी राव गायकवाड़ ने समाज की प्रगति के लिए आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा पर बल प्रदान किया था। स्वामीजी देश भ्रमण करते हुए जब दक्षिण भारत के मैसूर में पहुँचे थे तब मैसूर के दीवान सर के शेषाद्रि अय्यर से उनकी भेंट हुई और उन्होंने इन्हें मैसूर राजदरबार के विभिन्न लोगों से मिलाया। शेषाद्रि ने उन्हें मैसूर के राजा से मिलाया। राजा से बात करते हुए स्वामीजी ने राजा को बताया कि "भारत की संपत्ति उसका अध्यात्म और दर्शन है। किन्तु आज हमारे देश की आवश्यकता आधुनिक विज्ञान और सर्वांगीण आमूलचूल सुधार की है"।[15]..

आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातें राष्ट्र के संदर्भ में कही गई हैं। अब इस बात को समाज निर्माण के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। अगर भारतीय समाज तथा इस देश के कोई भी समाज हो उसकी जागृति के लिए उसके निर्माण के लिए वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेना चाहिए। आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का प्राण है। लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की भी इसके साथ बहुत आवश्यकता है। अर्थात् स्वामीजी के मन में सर्वदा ही यह बात झलकती थी कि भारत का कोई एक निश्चित समाज हो या सम्पूर्ण भारत का समाज उसके विकास के लिए और उसके नव निर्माण के लिए आध्यात्मिकता के साथ वैज्ञानिकता का जोड़ भी होना चाहिए। समाज निर्माण के क्षेत्र में उस समाज के प्रत्येक लोगों की चाहे वे गृहस्थ हों या सन्यासी हों सबकी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज से कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं है। स्वामी विवेकानंद के गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद जब स्वामीजी की भाँति एक परिव्राजक के रूप में देश भ्रमण करते हुए वर्तमान गुजरात राज्य के जामनगर क्षेत्र में पहुँचे थे तो अचानक उन्हें उदर शूल रोग हो गया था और वे चिकित्सालय की खोज करते हुए कविराज मणिशंकर विट्ठल के पास पहुँचे और उनकी चिकित्सा के माध्यम से अखण्डानन्द दो दिनों में ही ठीक हो गए। स्वामी अखंडानंद ने कविराज महोदय को बताया कि उनके अनुसार प्रत्येक सन्यासी को चिकित्सा का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। उसे चिकित्सक भी होना चाहिए। आध्यात्मिक ज्ञान तो उसके पास रहता ही है। समाज के कल्याण के लिए जिस प्रकार उसने आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त किया है ताकि वह जन समाज को इस भव बंधन से मुक्त हो सके। उसी प्रकार से समाज के कल्याण के लिए उसे चिकित्सक भी होना चाहिए। यहाँ कल्याण का अर्थ समाज के नव निर्माण से जोड़ा जाना आवश्यक है। अर्थात् एक चिकित्सक के रूप में भी एक सन्यासी इस समाज का नव निर्माण कर सकता है। ऐसा करने से समाज के रोग और औषधि सम्बंधी समस्या दूर हो जाएगी। यहाँ समाज निर्माण के विषय में एक और अत्यंत महत्वपूर्ण बात उल्लेख करना आवश्यक है वह यह कि जिस व्यक्ति के हृदय में दया है, करुणा है, ममता है, त्याग की भावना है, दान की भावना है, इतना ही नहीं यहाँ तक कि भिक्षा में रहकर के भी जिस व्यक्ति के मन में समाज के प्रति कल्याण की भावना निरंतर विद्यमान रहती है। इन सब गुणों के साथ ही उस व्यक्ति के मन में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की भावना भी

विद्यमान रहती है। उसी व्यक्ति के हाथों समाज का निर्माण बड़े ही सुनियोजित ढंग से किया जा सकता है। महाभारत में हालाँकि ये सभी बातें धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा नृग के ब्राह्मण के परिचयात्मक लक्षण के विषय में पूछे जाने पर उन्हें बताया था। इस तत्व को समाज निर्माण के विषय में भी अवश्य ही देखा जाना चाहिए। जिस समाज का नव निर्माण करना है उस समाज के प्रति मन के भीतर श्रद्धा-भक्ति की भावना विद्यमान रहना अत्यंत ही आवश्यक है।

भारतवर्ष ऋषि-मुनियों की भूमि है। परिणाम स्वरूप साधु-संतों को इस देश में बड़े ही आदर की दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन समाज में कुछ ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो साधुओं का सम्मान नहीं करते हैं। बहुत बड़ा धनी परिवार है लेकिन साधु-संतों के साथ बहुत बुरा आचरण करता है। गुजरात अंचल के काठियावाड़ में निवास करने वाले शंकरलाल का परिवार समाज के ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है। सबसे बड़ी दुःख की बात इस परिवार में यह है कि यहाँ शंकरलाल की वृद्धा माता का कोई महत्व नहीं है। शंकरलाल को छोड़कर उस परिवार में जितने भी लोग हैं चाहे उनका बड़ा भतीजा मोटाभाई हो, उनके भाई की पत्नियाँ हों कोई भी उनकी बूढ़ी माता के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। वह वृद्ध महिला उस पुरे परिवार के लिए एक बहुत ही उपेक्षित वस्तु थी। बात जहाँ तक शंकरलालजी की है वे भी अपनी व्यापारिक गतिविधियों में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण अपनी माँ का ध्यान नहीं रख पाते थे। यहाँ तक कि उस परिवार में उस वृद्धा की स्थिति ऐसी थी कि उस घर के नौकर तक उनकी उपेक्षा किया करते थे। घर के अन्य लोगों की सहायता के लिए भले ही नौकर विद्यमान थे लेकिन उस वृद्ध महिला की सहायता के लिए कोई नहीं था। यह वह वृद्ध महिला अपने ही घर में अपने ही लोगों के द्वारा उपेक्षित थी। स्वामी अखंडानंद ने जब उनसे यह पूछा कि "माताजी आप अपने कपड़े किसी से धुलवाती नहीं या कोई धोता नहीं ?"[16].. तब वृद्धा ने जो कहा वह ध्यान देने लायक बात है “जैसे शरीर को अपने रोग स्वयं ही झेलने पड़ते हैं वैसे ही इसे अपने वस्त्र भी स्वयं ही धोने पड़ते हैं”।[17]..

स्वामी अखंडानंद जब नौकरों के बारे में पूछते हैं तो वृद्धा जो बताती है यह भी ध्यान देने लायक बात है कि "जिनके नौकर हैं उनके धोते हैं। मैं इस घर में क्या हूँ कि नौकर मेरे कपड़े धोएँ ! मुझे तो अपना काम स्वयं ही करना है"।[18].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता हैं जो लोग अपने ही परिवार के वृद्ध जनों का सम्मान नहीं करते और उनके प्रति एक उपेक्षित दृष्टि रखते हैं वे इस पुण्य भूमि भारतवर्ष के साधु-संतों का आदर कैसे कर सकते हैं ? उनके माध्यम से एक दक्ष समाज का निर्माण कभी नहीं किया जा सकता। हालाँकि यह अलग बात है कि स्वामी अखंडानंद की पहल के उपरांत परिवार के अन्य लोगों सहित नौकरों ने शंकरलाल की माँ के प्रति अपने आचरण में परिवर्तन किया। अब नौकर भी उनकी सहययता करने लगे थे।

स्वामी विवेकानंद राजस्थान, गुजरात आदि प्रांतों का भ्रमण करते हुए महाराष्ट्र पहुँचे थे तब वे मार्ग में चलते हुए निढाल होकर एक वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे। इससे पूर्व वेदकर का व्यवहार उनके प्रति कुछ हद तक ठीक नहीं था। जिस स्थान पर स्वामीजी लेटे हुए थे उस स्थान पर लोगों का आना-जाना इतना अधिक नहीं था। यह स्थान काफ़ी शांत था। संध्या के समय वहाँ तीन पुरुषों का आगमन हुआ। यह तीनों पुरुष निम्न जाति के थे। फिर भी उन्होंने अपने हृदय की उदारता दिखाकर उन्हें इस भीषण संकट से मुक्ति दिलवाई थी। सर्वप्रथम स्वामी ने उन तीनों पुरुषों को देखकर उन्हें पुकारना चाहा किंतु अपने दुर्बल कंठ के कारण वे उन्हें पुकार नहीं पाए। भले ही वे उन्हें पुकार नहीं पाए थे लेकिन यह भगवान की ही इच्छा थी कि उनमें से जो सबसे उम्रदराज़ व्यक्ति था उसकी नज़र स्वामीजी पर पड़ी। हालाँकि उन तीन लोगों में वृद्ध व्यक्ति ने ही उनकी सहायता की माँग की थी। राह में चलते हुए कोई भी व्यक्ति संकटग्रस्त क्यों न हो उसकी रक्षा करना मानव मात्र का धर्म है। बाकी जो दो लोग थे वे इसलिए सहायता नहीं करना चाहते थे कि वह व्यक्ति एक सन्यासी है।गेरुआधारी है। अगर इस साधु का प्राण उन्होंने बचा लिया तो कहीं वे भंगी जाति के होने के कारण इस सन्यासी के कोप का भाजन भी बन सकते हैं। लेकिन इतना सब कुछ सोचते हुए भी वे स्वामीजी को उठाकर अपने घर में ले जाते हैं और उनकी सेवा भी करते हैं। यह स्वामीजी की उदारता ही थी कि वे उसी भंगी परिवार का भोजन ग्रहण

करते हैं। यह परिवार काफ़ी उदार था। इनकी उदारता का वर्णन करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "इस उपेक्षित नीच जाति के लोगों के हृदय की श्रेष्ठता देखकर वे विस्मित हो गए। उनमें उच्च भावों के अंकुर देखकर स्वामी के मन में बड़े वेग से विचार मंथन हुआ सिद्धि लाभ के लिए मैंने संसार त्याग दिया है। घर-घर भिक्षा माँगने और जगह-जगह घुमने मात्र से वह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। मैं निर्लज्ज भाव से घूम-घूमकर दूसरों के घर में भोजन करता हूँ और इससे विवेक को कष्ट भी नहीं होता – बिलकुल एक कौए के समान। अब और भिक्षाटन नहीं करूँगा। मुझे खिलाने से ग़रीबों का क्या लाभ ? बल्कि एक मुट्ठी चावल मिलने पर वे अपने बाल-बच्चों को खिला सकते हैं। फिर यदि भगवत प्राप्ति ही नहीं हुई तो इस देह को रखने से क्या लाभ ? एक गहन आध्यात्मिक असंतोष तथा आत्मपरिवर्तन के भाव ने उन्हें आछन्न कर दिया था। उस परिवार से विदा होकर जब वे चले तो उनके भीतर जैसे बहुत कुछ बदल चुका था"।[19]..

हृदय की श्रेष्ठता मनुष्यत्व या मानवता ही सबसे बड़ी पहचान होती है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसी बात नहीं है कि ऊँची जाति के होने से ही व्यक्ति की महानता दिखाई देगी बल्कि बात यहाँ यह है कि मनुष्य की श्रेष्ठता और निकृष्टता तो व्यक्ति के पूर्व जन्म के संस्कार होते हैं। व्यक्ति के चारित्रिक गुणों का प्रादुर्भाव तो उसके पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर होता है। स्वामीजी को ऐसा लग रहा था कि जिस सुख और आनन्द के लिए उन्होंने गृह त्याग कर सन्यास ग्रहण किया था उससे भी कही अधिक आनन्द वे अपने परिवार के बीच रहकर प्राप्त कर रहे हैं। अपने घर से अपने बच्चों के लिए तैयार भोजन का हिस्सा उन्होंने उन्हें खाने के लिए दिया। उन्होंने ही संकट के समय उनके प्राणों की रक्षा की थी। स्वामी विवेकानंद के जीवन में घटित होने वाली इस घटना में ये मेहतर समाज के ये जो तीन पुरुष पात्रों का आगमन होता है इनके चरित्र को समाज निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। इन उदारवादी लोगों ने हिंदू समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था से ऊपर उठकर कार्य किया है। उन्होंने यह नहीं सोचा कि सन्यासी की यदि उन्होंने प्राण रक्षा की तो यह समाज उन्हें क्या कहेगा। हालाँकि उस वृद्ध पुरुष को छोड़कर अन्य जो दो लोग थे उन्होंने पहले कुछ आनाकानी की थी कि यह व्यक्ति सन्यासी है। साथ ही साथ यह बात

तो तय है कि वह उच्च जाति का है यदि हमने उसे बचा लिया तो वह हम पर ही क्रोधित भी हो सकता है एवं एक गेरुआधारी को बचाने के अपराध में उन्हें साधु के कोप का भाजन बनना पड़ सकता है। लेकिन उन तीन लोगों में जो वृद्ध व्यक्ति है उसका कहना था कि किसी व्यक्ति को मृत्यु के मार्ग में छोड़कर जाना उचित नहीं है। यह अच्छी बात नहीं है। यह मानवता की निशानी है। वृद्ध की बातों को लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "अरे हम भी कोई बाहमन हैं कि मरते हुए आदमी को छोड़कर चल दें। मर गया तो ही उठाएँगे। बच गया तो फूँकने से बच जाएँगे"।[20].. इन पंक्तियों के माध्यम से यह बताया गया है कि संकट के समय या किसी व्यक्ति को मरते हुए छोड़कर चले जाना मानवता की निशानी नहीं है बल्कि ऐसी में परिस्थिति में उस व्यक्ति की सहायता करना ही मानवता की निशानी है और यह ब्राह्मणत्व की निशानी है। किसी की मृत्यु होने के बाद जो उसकी अंतिम यात्रा में शामिल हो होते हैं वे ही उनके परम मित्र हैं। अगर सन्यासी की मृत्यु हो भी जाती है तो भी उस वृद्ध व्यक्ति के अनुसार यह उनकी जाति और समाज के लिए पुण्य का फल होगा क्योंकि वे एक निम्न वर्ग में पैदा होकर भी एक सन्यासी की अंतिम यात्रा में शामिल हो सकेंगे और अगर सन्यासी उनकी सेवा के माध्यम से बच जाता है तो यह भी उनके लिए पुण्य का फल है क्योंकि उन्होंने अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप एक सन्यासी के प्राणों की रक्षा की है। यह ध्यान रखना है कि इस प्रकार के जन कल्याण की भावना जिसके मन में विद्यमान है और जो किसी को उसके घोर संकट के समय छोड़कर नहीं जाता है बल्कि सहायता करने के लिए आगे बढ़ आता है उसी के माध्यम से समाज का निर्माण और समाज का कल्याण सुचारू रूप से हो सकता है। जिस व्यक्ति का मन एक सीमित फलक में समाहित न होकर एक व्यापक फलक में समाहित होता है वहीं व्यक्ति अपने समाज का निर्माण एक समृद्धशाली समाज के रूप में कर सकता है। व्यक्ति को केवल अपने आप को एक सीमित दायरे में आबद्ध नहीं रखना चाहिए कि वह केवल एक समाज से ही जुड़ा हुआ है। उसे स्वयं को इस देश का, एक सम्पूर्ण विश्व का अंग मानना चाहिए। उसे जाति और समाज से ऊपर उठकर स्वयं हो एक मनुष्य के रूप में ही सोचना चाहिए। अगर मनुष्य ही नहीं बन पाया तो इस समाज में उसका कोई महत्व ही नहीं है। मनुष्य स्वयं को एक व्यापक दायरे में लाएगा तो समाज का निर्माण भी सही तरीके से किया जा सकेगा।

लेखक नरेंद्र ने इस विषय में स्वामीजी के विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है "बंगाली हैं यह ठीक हैं किंतु हमें स्वयं को वहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए, मनुष्य बन सके तो सबसे अच्छा, न हो तो भारतीय तो बन ही जाना चाहिए"।[21].. कोई भी व्यक्ति समाज के निर्माण में अपनी भूमिका तभी निभा सकता है जब उसका दायरा सम्पूर्ण राष्ट्र में समाहित हो। ऐसा इस कारण है कि समाज राष्ट्र का ही हिस्सा है।

अगर एक समृद्धशाली समाज का निर्माण करना है तो सर्वप्रथम समाजशास्त्र के प्रति एक अवधारणा होनी चाहिए। यह बात उस समय की है जब स्वामी विवेकानंद एक परिव्राजक के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण करने के लिए निकले थे और वर्तमान गुजरात राज्य से महाराष्ट्र के बम्बई में पहुँचे थे और मुंबई के बी टी जंशन में भारत के विख्यात स्वतंत्रता सेनानी और महाराष्ट्र राज्य में गणेश महोत्सव को शुरू करने वाले तथा स्वाधीनता आंदोलन के चरमपंथी नेता जिनका नाम लाल, बाल, पाल की जोड़ी में शामिल है उनसे भेंट हुई थी। तिलकजी को पुणे जाना था। अतः वे पुणे जाने वाली ट्रेन में आकर बैठे थे। कुछ देर बार तिलक जिस डिब्बे में बैठे हुए थे उसी में स्वामी विवेकानंद भी आए। उनके साथ कुछ गुजराती सज्जन भी थे जिन्होंने स्वामीजी का परिचय तिलकजी से करवा दिया। गाड़ी में चलते-चलते रामायण, महाभारत, गीता उपनिषद आदि के विषय में दोनों विद्वानों के बीच बहुत सारी बातें हुई। बात चलते-चलते स्वामीजी को तिलकजी ने यह पूछा कि श्रीमद् भगवत गीता को स्वामीजी एक समाजशास्त्रीय ग्रंथ मानते हैं या धार्मिक ग्रंथ मानते हैं ? तिलक के इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने उनसे प्रतिप्रश्न किया वे स्वयं इन दोनों में किस प्रकार अंतर करेंगे ? यहाँ स्वामीजी के प्रति प्रश्न के उत्तर में तिलक ने जो कहा समाज निर्माण के दृष्टिकोण से उसे देखना ज़रूरी है। समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए तिलक ने कहा था कि "समाजशास्त्र से तात्पर्य है समाज में सबके अधिकार बराबर मानकर, सबके हित में काम किया जाए। समाज के प्रति अपने दायित्वों को पहचाना जाए और उनको पूरा किया जाए। किस प्रकार सारा समाज उन्नति करे, कैसे सारे समाज में सौहार्द का वातावरण बने ; और फिर भी व्यक्ति अपना विकास कर सके"।[22]..

समाज में सभी जाति के लोगों को सभी क्षेत्रों में उनके योग्यता के आधार पर समान अधिकार देने की बात कही गई है। समाज निर्माण की दृष्टि से अगर देखा जाए तो तिलक की यह बात समाज के वास्तविक यथार्थ को दर्शाती है। समाज का जो विकास है वह समाज के सभी वर्गों के लोगों तक जाति, धर्म, भाषा आदि की भावनाओं की सीमा रेखा का उलंघन करते हुए विकास की जो बयार है सभी लोगों तक पहुँचनी चाहिए। समाज का कोई भी तबका उससे वंचित नहीं होना चाहिए। लेखक नरेंद्र कोहली के शब्दों के शब्दों में 'समाज निर्माण समाज के चरित्र का निर्माण है'। समाज में अगर आपसी सौहार्द या भाईचारे की भावना नहीं रहे तो समाज का निर्माण सुचारू रूप से नहीं हो पाएगा क्योंकि इसके विकास में सभी लोगों की भागीदारी होती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की पहचान होती है कि किस व्यक्ति का क्या दायित्व है तो ही समाज निर्माण भली प्रकार से किया जा सकता है। भारतीय समाज एक आध्यात्मिक समाज है। यह प्राचीन मुनि-ऋषियों का समाज है। लेखक नरेंद्र कोहलीजी की मान्यता है कि समाज का जो बुद्धिजीवी वर्ग है वही ऋषि है। प्राचीन मुनि-ऋषियों ने भारतीय समाज को एक सभ्य और सुसंस्कृत समाज बनाने का प्रयास किया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से समाज को सभ्यता का ज्ञान प्रदान किया। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में यह कहा जा सकता हैं कि "श्रेष्ठ ! सभ्य ! सुसंस्कृत ! ऋषिगण इस सारे समाज को सुशिक्षित और आर्य बना रहे थे और रावण सबको भौतिकता और स्वार्थ में लिप्त कर राक्षस बना रहा था"।[23].. अर्थात् भारतीय समाज बुद्धिजीवियों का समाज है। समाज में अच्छाई और बुराई का संघर्ष चलता रहता है। समाज का बुद्धिजीवी वर्ग एक ओर जहाँ समाज को सदैव सद शिक्षा के द्वारा समाज में जागृति फैलाना चाहता है वहीं दूसरी ओर समाज के दुराचारी लोग समाज में विनाश और दुष्टता का वातावरण फैलाना चाहते हैं। यहाँ रावण की बात की गई है। समाज में कुछ दुष्ट लोग हैं वे अपने निजी स्वार्थ के कारण समाज के लोगों को शिक्षित नहीं करना चाहते हैं। वे समाज के लोगों को राक्षसी प्रवृत्ति की ओर मुड़ना चाहते हैं। ऋषि लोग समाज को आर्य बनाना चाहते हैं। आर्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है पूजनीय या श्रेष्ठ। समाज के जो दुष्ट लोग हैं वे समाज के सामान्य वर्गों को उनके निजी अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के द्वारा समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता है। स्वामीजी भारत भ्रमण करते

हुए जब महाराष्ट्र के मुम्बई के बी टी जंशन में पुणे जाने के लिए जिस रेल गाड़ी पर चढ़े थे उसी रेल गाड़ी में स्वतंत्रता सेनानी बालगंगाधर तिलक भी अपने घर पुणे जा रहे थे। गाड़ी में ही भारत के इन दो महापुरुषों के बीच परिचय स्थापित करने में कुछ गुजराती सज्जनों में बड़ी भूमिका निभाई थी। स्वामीजी ने समाज के विषय में चर्चा करते हुए तिलक को बताया "हिंदुओं का चरित्र इतना गिरा हुआ न होता तो विदेशी कैसे यहाँ अपना शासन करने लगते ? ईर्ष्या-द्वेष के मारे एक-दूसरे के विरुद्ध विदेशियों की सहायता न करते तो वे हमारे देश में पग भी कैसे रखते ? पहले हिन्दुओं ने अपना कर्तव्य देशप्रेम और बलिदान का आदर्श त्यागा या पहले विदेशी आक्रांता आकर उनकी छाती पर बैठ गए" ?[24].. तिलक की मान्यता थी कि भारत की जनता शताब्दियों से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है। अतः अब स्वतंत्रता के लिए राजनीति अनिवार्य है। स्वामीजी की एकमात्र विचारधारा यही थी कि देश के चरित्र में सुधार होना चाहिए। अगर देश के लोगों का चारित्रिक सुधार नहीं होगा तो राजनितिक संघर्ष भी उन्हें स्वतंत्रता नहीं दिला सकती। लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद की विचारधाराओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "यदि हिन्दुओं का चरित्र वैसा का वैसा रहा, तो कोई राजनैतिक संघर्ष उन्हें स्वराज्य नहीं दिला सकता। स्वराज्य मिल भी गया और चरित्र न सुधरा तो पुनः दासता आ जाएगी। इसलिए तिलकजी हमारे देश में समस्या चरित्र की है। हमें इस देश का चरित्र सुधारना होगा और इसका एकमात्र मार्ग है अध्यात्म। मैं राजनीतिक आंदोलन के स्थान पर आध्यात्मिक अभियान चलाना चाहता हूँ। हिन्दू स्वार्थी और लोभी न रहे। विलास का दास न रहे। ईर्ष्या-द्वेष को जीतकर देश के लिए कष्ट सहने के लिए प्रस्तुत हो। सेवा की दीक्षा ले। अपने देश के दीन-दुखियों पर अत्याचार का अपना शताब्दियों पुराना अभ्यास बंद करे। पीड़ितों को साक्षात शिव रूप मानकर उनकी सेवा करे, उनकी उपासना करे ; और इस सेवा का अवसर देने के लिए उनका कृतज्ञ हो। तभी यह देश स्वाधीन हो जाएगा"।[25].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों को स्वामीजी ने भारत की स्वाधीनता के लिए भी आवश्यक बताया है। ठीक यहीं बात और इस देश की सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर देखा तो भी यह सत्य है। यदि

हिंदुओं की बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि हिंदुओं का जो समाज है उसके मूल में आध्यात्मिकता छिपी हुई है। हिंदुओं का खान-पान, सोना-जागना, उठना बैठना, बोलना-चलना सब धार्मिक है। हिंदुओं को यह बात स्मरण रखना चाहिए। भारतीय चिंतन में यहाँ भारतीय चिंतन कहने का अभिप्राय है सनातन आध्यात्मिक चिंतन या हिंदू आध्यात्मिक चिंतन में चरित्र को सर्वाधिक महत्व दिया है। लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार "चरित्र जो है उसमें बहुत सारे तत्व हैं जैसे ब्रह्मचर्य, सत्य दूसरा है। अगर एक व्यक्ति झूठा है तो वह चरित्रवान नहीं हो सकता। सेक्स के सम्बन्धों में भी सत्यनिष्ठ होना पड़ेगा, अपनी पत्नी के प्रति निष्ठावान है तो चरित्रवान है, पैसे के मामले में अगर बेईमानी नहीं करता है, दूसरों के पैसे नहीं खाता है तो भी चरित्र का वो गुण मानते हैं उसको, तो सत्य और इसके आसपास के जितने, काम, क्रोध, मद, लोभ वगैरा को छोड़ करके जो चरित्र है, चरित्र है। मतलब ये है कि दूसरों को आप कष्ट नहीं देंगे, पर कल्याण करेंगे, ये सद गुण हैं चरित्र के उनके आधार पर ही चरित्र को नापते हैं। अगर आप अपने स्वार्थ में दूसरों का अहित करते हैं तो आप चरित्रवान नहीं कहलाएँगे"।[26].. लेखक द्वारा कहा गया चरित्र से सम्बंधित इन बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अगर व्यक्ति अपने जीवन में सत्य के प्रति निष्ठावान है तो वह चरित्रवान है।

स्वामी विवेकानंद जब परिव्राजक थे और देश भ्रमण करते हुए महाराष्ट्र के मुंबई में पुणे जाने के लिए बीटी जंशन से पुणे की गाड़ी में चढ़े थे तब कुछ देर बाद स्वामी विवेकानंद भी उस गाड़ी में आए और भारत के इन दोनों विद्वानों के बीच एक परिचय स्थापित हो गया। दोनों के बीच भारतवर्ष से सम्बंधित विभिन्न मुद्दों पर बातचीत होने लगी थी। इस बातचीत में समाजिक मुद्दा भी उभरकर आया। स्वामीजी ने तिलक को बताया कि समाज को अवश्य ही अपना सुधार करना होगा नहीं तो राष्ट्र की अधोगति होगी। लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी की बातों को इन शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया है कि "समाज को तो सुधरना ही होगा नहीं तो देश रसातल में चला जाएगा। स्वामी बोले, किंतु मैं समझता हूँ कि इस क्षेत्र में भी अभी बहुत सोच-विचार का अवकाश है। विदेशों और विधर्मों के संस्कारों में पले-बढ़े समाजों के अनुकरण को मैं समाज सुधार नहीं मानता। आर्यसमाज

और ब्रह्मसमाज ने हिंदू समाज के सुधार के नाम पर बहुत कुछ ऐसा किया है जिसे मैं मात्र हिंदुओं का विभाजन मानता हूँ , सुधार नहीं"।[27]..

समाज निर्माण के क्षेत्र में या समाज सुधार के क्षेत्र में चिंतन की प्रक्रिया की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका है। देशीय पद्धति से समाज का निर्माण होगा या समाज का सुधार होगा। विदेशी संस्कृति में पलने से कोई भी व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति की पहचान नहीं कर सकता है। अपनी ही सांस्कृतिक उदाहरणों के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने समाज को सुधार सकता है। स्वामीजी ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात बताई वह यह कि समाज का विधि-विधान अध्यात्म की दृष्टि से है, आदर्श की दृष्टि से नहीं। अर्थात् आध्यात्मिकता जो है वहीं भारतीय संस्कृति का मूल है। समाज निर्माण के लिए समाज के विभिन्न वर्गों के बीच में समानता की आवश्यकता है अगर ऐसा नहीं है तो समाज निर्माण सटीक रूप से नहीं किया जा सकता। स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण के आधार पर अगर कहा जाए तो यह कहा जा सकता है कि यदि हिंदू समाज में बाल-विवाह की प्रथा बनी रही तो समाज का सुधार नहीं किया जा सकता है। समाज का नवनिर्माण नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह बाल-विवाह के ख़िलाफ़ है। आध्यात्मिकता के बिना हिंदू समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदू धर्म में ब्रह्मचर्य को मानव जीवन में काफ़ी महत्व दिया गया है। बालगंगाधर तिलक ने हिंदू समाज में प्रचलित बाल-विवाह के विषय में चर्चा करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा कि "बाल-विवाह हिंदू धर्मशास्त्र के विरुद्ध है। ब्रह्मचर्य आश्रम को पूरा किए बिना गृहस्थ आश्रम में प्रवेश नहीं किया जा सकता"।[28]..

हिंदू समाज का निर्माण करने हेतु समाज में, प्रचलित कुरितियों का समापन करना होगा। हिंदू समाज के लोगों को ब्रह्मचर्य का महत्व समझाना होगा। ब्रह्मचर्य मानव के जीवन का एक ऐसा दौर है जो उसे समाज में अपने भावी जीवन को संचालित करने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। हिंदू शास्त्र के अनुसार मानव जीवन को चार भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। स्वामीजी यहाँ ब्रह्मचर्य की बात कह रह रहे हैं। यहाँ ब्रह्मचर्य से अभिप्राय है शिक्षा और भगवत भक्ति। जब तक शिक्षा और भगवत भक्ति का वातावरण समाज में निर्मित नहीं होगा तब तक हिंदू समाज

का निर्माण नहीं होगा। विवाह गृहस्थ जीवन का प्रतीक है। जब तक व्यक्ति सुशिक्षित नहीं होगा, जब तक वह स्वयं को गृहस्थ आश्रम का योग्य नहीं बना सकता तब तक उसे वैवाहिक बंधन में आबद्ध नहीं होना चाहिए। बाल्य काल में चाहे लड़का हो या लड़की उनका शारीरिक और मानसिक गठन सुचारू रूप से हो नहीं पाता है। बाल्य काल में चाहे लड़के हों, चाहे लड़कियाँ उन्हें मानव जीवन में विवाह का क्या महत्व है इस बात का कोई बोध नहीं होता। वैवाहिक बंधन में आबद्ध कराने से पूर्व उसके आध्यात्मिक महत्व को भी समाज के लोगों को समझाने की आवश्यकता है। सत्य तो समाज में ही बोला जाता है। सेवा तो समाज में ही की जा सकती है, त्याग भी तो समाज में ही स्वामीजी के अनुसार "तपस्या के लिए एकांत का महत्व है ; किंतु वह तपस्या का अभ्यास है।वास्तविक तपस्या तो समाज में ही होती है। वन के एकांत में रहकर कोई व्यक्ति सत्य बोलने की तपस्या कैसे कर सकता है किया जा सकता है"।[29]..

सन्यासी या ऋषि-मुनि की जो भगवान की तपस्या करते हैं वह ऐसी बात नहीं है वह केवल उनके निजी कल्याण के लिए है बल्कि यह सम्पूर्ण समाज सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए है समाज के सभी वर्गों की जागृति के लिए ही है। यहाँ पर यह बताया जा रहा है कि वास्तविक तपस्या समाज में ही होती है। स्वामीजी की इस उक्ति को दो रूपों में देखा जा सकता है एक तो यह कि सन्यासी की तपस्या का मूल उद्देश्य समाज कल्याण या जगत कल्याण होना चाहिए। भले ही सन्यासी का अपना कोई निजी सम्बंध नहीं होता लेकिन यह सम्पूर्ण समाज या कहा जाए कि सम्पूर्ण जगत ही उसका अपना परिवार होता है। अतः सन्यासी सम्पूर्ण समाज या सम्पूर्ण मानव मानव जाति के कल्याण का, संसार के या सम्पूर्ण समाज के लोगों को अवनति या कहा जाए समाज में व्याप्त पापाचार के मार्ग से उद्धार करता है। दूसरा पक्ष इसका यह है कि अगर एक सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है तो सामान्य व्यक्ति अगर समाज का निर्माण करना चाहता है या कहा जाए कि समाज का कल्याण करना चाहता है तो उसे समाज के भीतर रहते हुए ही समाज के लोगों की मंगल कामना कर सकता है उसके बाहर रहकर नहीं। एक तरफ़ से देखा जाए तो चाहे कोई सन्यासी हो या गृहस्थ हो वह किसी भी परिस्थिति में समाज से अछूता कभी नहीं रह सकता है क्योंकि व्यक्ति जहाँ भी रहता है

वहाँ एक समाज होता है। अतः समाज के लोगों के कल्याण करना या कल्याण करने का प्रयास करना ही वास्तविक तपस्या है क्योकिं हिंदू चिंतन के अनुसार प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का स्वरूप है। कदाचित यहीं कारण कि एक बार जब स्वामी विवेकानंद के दीक्षा गुरु ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंसदेव रानी रासमणि के दामाद मथुरबाबू के साथ तीर्थ यात्रा करते हुए वर्तमान झारखंड राज्य के वैद्यनाथधाम में गए तो उन्होंने सर्वप्रथम उन्होंने मथुरबाबू से जीवंत शिव के पूजन की बात की थी। उनकी मान्यता थी कि मंदिर के बाहर ये जो दरिद्र भिक्षुक बैठे हुए हैं ये लोग ही वास्तविक शिव रूप हैं। अतः इनकी पूजा अवश्य ही की जानी चाहिए और मथुरबाबू से उन्होंने यह भी कहा था कि इनकी पूजा किए बिना वे और आगे नहीं बढ़ सकते हैं। इन लोगों में छोटे-छोटे बच्चे भी थे।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 15/11/2020 को लेखक नरेंद्र कोहली से मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार

2 Narendra Kohli in you tube Ramkrishna Ashram Rajkot https://www.youtube.com/watch ?v=3GCcaC-CSlo&t=1528s

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 90

4 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 53

6 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 88

8 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

[9] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 157

[10] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 157

[11] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 173

[12] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 257

[13] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 291

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक , पृष्ठ संख्या 292

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 139

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 40

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 40

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 40

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 55

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 54

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 57

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 75

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 182

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 80

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो, खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 80

[26] 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

[27] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 81

[28] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 81

[29] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, 83

iii. राष्ट्र निर्माण : पूर्व एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य

किसी भी देश को एक विकसित राष्ट्र के रूप में निर्मित करने हेतु उसका निर्माण बड़े ही सुनियोजित ढंग से किया जाना चाहिए। किसी राष्ट्र का निर्माण सही तरिके से नहीं होगा तो उसका विकास भी सही तरिके से नहीं हो पाएगा। किसी भी राष्ट्र का निर्माण सुनीयोजित ढंग से करने हेतु उस देश में प्रचलित भाषाओं को उस देश के निवासियों के द्वारा महत्व दिया जाना चाहिए। किसी भी देश में निवास करने वाली जनता को जब तक अपने देश की भाषा की जानकारी नहीं होगी तब तक वह अपने समाज और उस समाज से जुड़ी हुई संस्कृति एवं उस संस्कृति से जुड़े हुए जो लोग हैं, वहाँ का जो लोक समाज है उसका निर्माण नहीं कर पाएगी।

इस बात को तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के निर्माण नामक खंड में वर्णित एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जब स्वामी विवेकानंद मेट्रोपोलिटन इंस्टिटूशन में पढ़ते थे तब उन्हें अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाने के लिए चुना गया था। परंतु वे इस बात के लिए तैयार नहीं हुए थे क्योंकि अब तक उन्हें अपने ही देश की विभिन्न भाषाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। स्वामीजी ने अपने अध्यापक महोदय से कहा कि"पढ़ तो सकता हूँ, किंतु ऐसा होता नहीं है। जो बच्चा अपनी माँ को अभी पहचानता भी न हो, उसे यदि किसी अन्य स्त्री की गोद में दे दिया जाएगा, तो उसके मन में अपनी माँ के प्रति प्रेम कैसे विकसित होगा" ?[1].. स्वामीजी की बातों को सुनकर अध्यापक का कहना था कि इस बात में तो कोई बुराई दिखाई नहीं देती है चाहे अपने देश में रहने की अभिलाषा हो या विदेश में। व्यक्ति कहीं भी निवास कर सकता है। अध्यापक ने एक और बात बताई थी जो इस प्रकार है "अपनी माँ से नैसर्गिक प्रेम होता ही है, मौसी से भी प्रेम हो जाए तो क्या बुरा है" ?[2].. स्वामीजी राष्ट्र के नव निर्माण में किसी देश की अपनी भाषा के प्रबल समर्थक थे। व्यक्ति तभी अपने राष्ट्र का निर्माण सुचारू रूप से कर पाएगा जब उसे अपने समाज और अपनी भाषा की जानकारी होगी। यहाँ पर यह बताया जा रहा है कि 'जो बच्चा अपनी माँ को पहचानता ही न हो, उसे यदि किसी अन्य स्त्री की गोद में दे दिया जाएगा, तो उसके मन में अपनी माँ के प्रति प्रेम कैसे विकसित होगा ? यहाँ माँ से अभिप्राय है अपना देश और

अपने देश की भाषाएँ । अगर अपने देश और उसकी भाषा से व्यक्ति दूर चला जाएगा तो वह अपने राष्ट्र को नहीं जान पाएगा। यदि देश के निवासी अपने देश को नहीं जानेंगे या जानने का प्रयास नहीं करेंगे तो वे राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पाएँगे। देश की जो कला है और उसकी जो संस्कृति है उससे उनका परिचय नहीं हो पाएगा। जब कोई व्यक्ति अपने देश को जान ही नहीं पाएगा तो फिर वह उसे विकास के मार्ग पर कैसे ले जा पाएगा ?

जिससे परिचय नहीं हो पाएगा उससे व्यक्ति के मन के भीतर सहानुभूति की भावना भी नहीं विकसित होगी। अपने देश को अपनी भाषा और संस्कृति के माध्यम से ही जाना जा सकता है। अगर व्यक्ति अपने ही देश की भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं करेगा तो वह देश की ग्रामीण जनता से भी संवाद स्थापित नहीं कर पाएगा। यहाँ पर यह बताया गया है कि अगर किसी छोटे से बच्चे को अपने देश और समाज की संस्कृति से दूर हटाकर विदेशी संस्कृति में भेज दिया जाए तो एक लम्बे कालखंड तक अपने समाज और संस्कृति से दूर रहने के परिणाम स्वरूप अपने समाज, संस्कृति और अपनी मातृ भाषा के प्रति उसके मन में श्रद्धा और भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक लम्बे कालखंड तक विदेशी संस्कृति से जुड़े रहने के कारण नवयुवकों में अपने ही देश और संस्कृति के प्रति एक पराएपन का बोध होता है। जब व्यक्ति के मन में देश के प्रति पराएपन का बोध होगा तब वह देश का विकास नहीं कर पाएगा। किसी भी राष्ट्र के विकास में वहाँ निवास करने वाले लोगों की धार्मिक भाषा की भी भूमिका है। स्वामीजी देश की प्रगति के लिए एवं उसे सुचारू से निर्मित करने के लिए प्राचीन ज्ञान और नवीन ज्ञान दोनों का सामंजस्य चाहते थे। यदि भारत राष्ट्र के दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारत का जो आध्यात्मिक ज्ञान है, प्राचीन ज्ञान है वह संस्कृत में उपलब्ध है। अतः जब तक संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं होगा तब तक प्राचीन भारत के मूलभूत तत्वों की जानकारी प्राप्त नहीं होगी। अतः न तो राष्ट्र का विकास होगा और न ही प्राचीन ज्ञान और नवीन ज्ञान में सामंजस्य स्थापित होगा। परिणाम स्वरूप देश का विकास और उसका निर्माण अवरुद्ध होगा। अध्यात्म या धर्म की भाषा केवल हिंदुओं के लिए ही आवश्यक है ऐसी बात नहीं है बल्कि अन्य धर्मों को मानने वाले लोगों के लिए उनके धर्म की भाषा, आध्यात्मिक पुस्तकों की भाषा के विषय में जान लेना उनके लिए आवश्यक है नहीं तो वे भी अपने राष्ट्र का

निर्माण नहीं कर पाएँगे। तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के तीसरे खंड में लेखक ने एक ऐसे पुरुष एवं एक ऐसी महिला का वर्णन किया है जिन्हें इस बात की भी जानकारी ही नहीं है कि उनके धर्म की भाषा क्या है ? वह महिला यह सोचती है कि अंग्रेज़ी ही उसके धर्म की भाषा है लेकिन उस अंग्रेज़ महिला को इस बात की भी जानकारी नहीं है कि उसके धर्म की भाषा अंग्रेज़ी नहीं बल्कि ग्रीक है। यहाँ तक कि उसके पति जो हिंदू धर्म से ईसाई धर्म में धर्मान्तरित हुआ था वह भी अपनी पत्नी की भाँति आंग्ल भाषा को ही अपने धर्म की भाषा मानता है । उसका नाम हृदय है। वह स्वामी विवेकानंद के गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद से कहता है कि "उनकी माँ चाहती है कि वे अंग्रेजी ही बोलें। जब अपनी भाषा छूट रही है तो अपने धर्म की भाषा ही सीखें"।[3].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया गया है जिसे अपने धर्म या जिस सम्प्रदाय से वह जुड़ा हुआ है उसके धर्म ग्रंथ की भाषा की जानकारी नही है।अगर किसी व्यक्ति को अपने धर्मग्रंथों की भाषा की जानकारी नहीं है तो वह आने वाली पीढ़ियों को धर्म और अध्यात्म के बारे में वास्तविक जानकारी नहीं दे पाएगा एवं न ही वह अपने धर्म के आधार पर राष्ट्र का निर्माण कर पाएगा।

राष्ट्र निर्माण पर बात करते हुए भाषा के उपयोगिता की बात हो रही है। नरेंद्र कोहली विरचित तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के तीसरे खंड में जिसका शीर्षक परिव्राजक है उसमें एक पात्र का उल्लेख है जो अपने देश की भाषा नहीं बल्कि विदेशी भाषा अंग्रेज़ी का प्रबल समर्थक है। स्वामी विवेकानंद और उनके गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद जब परिव्राजकों के रूप में भारत भ्रमण को निकले थे और भ्रमण करते हुए बिहार के भागलपुर में गंगा के किनारे मन्मथनाथ चौधरी के यहाँ पहुँचे तो अपने ब्राह्म संस्कार के कारण सन्यासियों की उपेक्षा करने के लिए उन्होंने बौद्ध धर्म पर लिखी गई एक अंग्रेज़ी पुस्तक पढ़ना शुरू किया। तब स्वामी विवेकानंद ने उनसे यह जानना चाहा कि वे यह कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हैं ? तो मन्मथ बाबू ने जो कुछ कहा उससे वे अंग्रेज़ी जोकि एक विदेशी भाषा है उसके समर्थक नज़र आते हैं। साथ ही साथ हिंदू साधु-संतों के प्रति भी उनके मन

में एक प्रकार का उपेक्षा बोध भी देखने को मिलता है। मन्मथ बाबू के कथन को लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "कुछ पढ़े-लिखे भी हैं ? अंग्रेजी आती है ?"[4].. ऐसे विचार रखने वाले लोगों के द्वारा राष्ट्र निर्माण नहीं किया जा सकता।

राष्ट्र के निर्माण में जिस प्रकार से देश की भाषा की आवश्यकता है ठीक इसी प्रकार शिक्षा की भी आवश्यकता है। कदाचित यहीं कारण है कि शिक्षा को मानव जाति का मेरुदंड कहा जाता है। जिस प्रकार से मेरुदंड के बिना कोई भी मेरुदंडी प्राणी सीधा खड़ा नहीं हो सकता उसी प्रकार शिक्षा के अभाव में भी मनुष्य ठीक से खड़ा नहीं हो सकता। यहाँ खड़े होने का अभिप्राय यह है कि वह पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकता। स्वामी विवेकानंद महिलाओं की शिक्षा को बहुत महत्व दिया करते थे। शिक्षा के बिना नारी समाज की उन्नति नहीं हो सकती। और जब तक यथोचित शिक्षा नारी को नहीं मिलेगी तब तक वे अपने अधिकारों को भी नहीं समझ पाएँगी। बात यहाँ विशेष रूप से राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में हो रही है तो जिस प्रकार से पौराणिक काल में नारी और पुरुष के बीच में शिक्षा का वितरण समान रूप में होता था और उसमें किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। ठीक इसी प्रकार अब भी पुरुषों और स्त्रियों में शिक्षा का वितरण समान रूप से किया जाना चाहिए क्योंकि एक शिक्षित स्त्री-पुरुष के द्वारा ही एक अत्यंत सुंदर और समृद्धशाली राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है क्योंकि शिक्षित स्त्री-पुरुषों के माध्यम से ही एक शिक्षित माता-पिता का निर्माण होगा और शिक्षित माता-पिता के माध्यम से एक शिक्षित संतान का निर्माण होगा एवं शिक्षित संतान के माध्यम से एक शिक्षित समाज का निर्माण होगा तथा एक शिक्षित समाज से शिक्षित राष्ट्र का निर्माण होगा। स्वामीजी का कहना था कि 'शिक्षा के बिना नारी का उद्धार नहीं हो सकता'। अर्थात् समाज में पुरुषों के द्वारा उसका जो शोषण हो रहा है या कहा जाए उस पर अत्याचार हो रहा है उसे कभी भी रोका नहीं जा सकेगा और एक सुगठित राष्ट्र का निर्माण भी नहीं हो सकेगा यदि नारियाँ शिक्षित नहीं होंगी। राष्ट्र निर्माण में स्वामीजी ने न केवल मातृ भाषा एवं देश की भाषाओं का ज्ञान तथा शिक्षा को ही महत्व दिया है बल्कि उन्होंने देश के ऐतिहासिक ज्ञान को भी महत्व

दिया है। उनका कहना था कि "अपने देश को जानने के लिए हमें अपना इतिहास पढ़ना चाहिए"।[5]..

प्रख्यात विद्वान स्वामी गंभीरानंद ने अपनी 'युगनायक विवेकानंद' नामक पुस्तक के प्रथम खंड में अंग्रेज़ी हुकूमत ने किस प्रकार भारतीय आध्यात्मिक इतिहास को विशेष रूप से वेदों को तोड़-मड़ोड़ कर पेश किया था इस बात को उन्होंने व्यक्त करते हुए लिखा है कि "भारत के वेद किसानों के संगीत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, भारत का धर्म एक निम्न स्तरीय सभ्यता से उधृत और परिपुष्ट हुआ है। उन्नतिशील सभ्यता के बीच में उसका आसन अटल नहीं रहेगा"।[6]..

अपने उपन्यास तोड़ो कारा तोड़ो के "परिव्राजक" नामक खंड में लेखक नरेंद्र कोहली ने राजनारायण बसु को एक ऐसे देशभक्त के रूप में दर्शाया है जो प्रारम्भ में अपने देश से घृणा करता था। देश की प्रत्येक वस्तु उसके लिए परायी थी। भारत के सामान उसके लिए बहुत अप्रिय थे। वह कभी भी अपनी मातृभाषा का प्रयोग नहीं करता था। राजनारायण तत्कालीन समय में उन भारतियों के समान हो चुका था जो भारतीय तो थे परंतु अपनी मानसिकता की दृष्टि से सम्पूर्ण रूप से अंग्रेज़ बन चुके थे। अंग्रेजी संस्कृति उन पर सम्पूर्ण रूप से हावी हो चुकी थी। परंतु अपने माता-पिता के निधन के बाद उन्हें वास्तविकता का आभास हुआ था। अगर कोई भी व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार एक धर्म से किसी दूसरे धर्म में धर्मान्तरित हो जाता है तो इस बात का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि उसकी मातृभाषा ही बदल गई। इस उपन्यास में हृदय बाबू एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरकर सामने आता है जिसकी मानो भाषा ही बदल गई है। लेखक नरेंद्र कोहली ने यहाँ एक सवाल उठाया है कि अगर कोई व्यक्ति किसी कारणवश अपना धर्म त्याग कर किसी दूसरे धर्म में जाता है तो उसकी जो मातृभाषा होगी क्या वह भी बदल जाएगी ? लेखक ने यह जिज्ञासा अपने पात्र अखंडानंद के माध्यम से उठाया है। स्वामी अखंडानंद जब हृदय से बातचीत करते हुए कहते हैं कि "बंगला और हिंदी सगी बहनें हैं। बंगाल से बाहर हम अपनी भाषा हिंदी ही मानते हैं। वह भारत माता की बेटियों में से एक है"।[7].. स्वामी

अखंडानंद की बातों को सुनकर हृदय बाबू ने उनसे जो कुछ कहा इससे भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी भाषा जो एक विदेशी भाषा है उसके प्रति उनकी मानसिकता प्रकट होती है। ईसाई होने के कारण अंग्रेज़ी के प्रति एक अपनत्व का बोध और भारतीय भाषाओं के प्रति एक परायापन का बोध उनके मन में जागृत हो चुका था। अंग्रेज़ी भाषा और भारतीय भाषाओं के प्रति हृदय बाबू का जो दृष्टिकोण है और उन्होंने अखंडानंद से जो कुछ कहा था उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "हिंदू रहता तो कदाचित मैं भी आपके ही समान सोचता। हृदय बाबू ने कहा, किंतु एक ईसाई के रूप में शायद इस प्रकार सोचना सम्भव नहीं है। हमें भारतीय हिंदुओं से विदेशी ईसाई अधिक अपने लगने लगे हैं। इसीलिए अंग्रेज़ी विदेशी भाषा नहीं बल्कि अपनी भाषा लगने लगी है"।[8].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति किन्हीं कारणोंवश अपने धर्म का त्याग कर दूसरे धर्मों को ग्रहण करते हैं और अपनी भाषा तथा संस्कृति को पराया मानते हैं एवं दो दिनों की विदेशी संस्कृति और भाषा को अपना मानते हैं वे राष्ट्र निर्माण नहीं कर सकते।

यह देखा गया है कि राष्ट्र निर्माण में भाषा उपयोगी है। यहाँ भाषा से तात्पर्य भारत की भाषाओं से है। हिंदी, संस्कृत और जिस व्यक्ति की जो भी मातृभाषा है उसका देश के निर्माण में क्या महत्व है इस तत्व को स्वामी विवेकानंद की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। स्वामीजी ज्ञान या शिक्षा के क्षेत्र में विदेशी भाषा के विरोधी नहीं थे क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा रेखा नहीं होती। स्वामीजी ने सामंजस्यता की बात कही है। वे सदैव राष्ट्र को विकसित करने के लिए प्राचीन ज्ञान और नवीन ज्ञान के सामंजस्य की बात करते हैं। खेतड़ी के महाराज को भी उन्होंने ठीक यहीं बात बताई थी। अर्थात् स्वामी विवेकानंद प्राचीन ज्ञान और समकालीन ज्ञान को साथ लेकर चलने की बात किया करते थे। उनकी मान्यता ही यह थी कि 'पुराने को छोड़ना नहीं है और नया उसमें जोड़ना है'। आगे चलकर खेतड़ी के राजा अजित सिंह को भी वे पुराने ज्ञान के साथ नए ज्ञान को जोड़ने की बात कहते हैं। स्वामीजी की मान्यता थी कि भारतवर्ष के प्राचीन समृद्धशाली विरासत को प्राप्त करने के लिए देवभाषा संस्कृत के ज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक है क्योकि संस्कृत के ज्ञान या संस्कृत के अध्ययन के द्वारा ही यह संभव हो सकता है। साथ ही साथ पाश्चात्य में जो

आधुनिक ज्ञान का विकास हुआ है उसकी जानकारी के लिए अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता है। एक तरफ से कहा जाए तो राष्ट्र निर्माण के लिए स्वामीजी पूर्व के ज्ञान के साथ पश्चिम के ज्ञान को मिलाना चाहते थे। ऐसा कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत और सनातन धर्म की आध्यात्मिक भाषा संस्कृत एवं विदेश की भाषा अंग्रेजी के इसी महत्व को स्वामी विवेकानंद ने पहचान लिया था तभी वे संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओं की शिक्षा पर बल देते हैं। भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में निर्मित करने के लिए प्राचीन ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान दोनों की आवश्यकता है।

स्वामीजी देश की प्रगति हेतु कृषि की भूमिका की भी बात करते हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस देश की 70% जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि कार्यों पर निर्भर है। अतः देश के ग्रामीण इलाक़ों और वहाँ के कृषि क्षेत्रों का विकास करने से ही इस देश का विकास सुचारू रूप से हो पाएगा और भारत राष्ट्र का निर्माण भी अत्यंत ही सुदृढ़ हो पाएगा। अब बात यहाँ यह आती है कि देश के गाँवों और उनमें निवास करने वाले किसानों का विकास किस विधि किया जाए ताकि जहाँ तक भारत राष्ट्र के निर्माण की बात है वह सुदृढ़ हो सके तो इसके लिए स्वामीजी वैज्ञानिक पद्धति को महत्व देते हैं वे कहते हैं कि "होना यह चाहिए कि वैज्ञानिक ढंग से खेती करें, ताकि हमारी उपज बढ़े। हमारे यहाँ आजकल यह हो रहा है कि जिसके पास ज्ञान है वह कृषि नहीं कर रहा है और जो कृषि कर रहा है उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है। हमारे युवक पढ़-लिखकर नगरों की ओर नहीं बल्कि गाँवों की ओर बढ़ें। हमारे ग्रामों में जो ज्ञान की भूख है उसे देखो। पढ़ा-लिखा आदमी जाकर ग्रामीणों के पास बैठता है तो वे उसका सम्मान करते हैं। इस प्रकार ऊँच-नीच का भेद कम होता है। तुम भी ज्ञान प्राप्त कर खेती करो"।[9].. आलोच्य गद्यांश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से ही गाँवों का विकास होगा और ग्राम्य क्षेत्र का विकास करने से ही देश का निर्माण सुदृढ़ होगा। बात जहाँ तक शिक्षा की है उसे केवल देश के नगरों या शहरों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि उसे शहरों या नगरों के साथ गाँवों में भी फैलाना चाहिए।

राष्ट्र को एक शक्तिशाली और सुचारू रूप से निर्मित करने के लिए आधुनिक ज्ञान की भी आवश्यकता है कदाचित यहीं कारण है कि सायजी राव गायकवाड़ ने पुस्तकालय आंदोलन चलाया। इतना ही नहीं अपने रियासत की जनता को अद्योगिक शिक्षा देने की परिकल्पना भी उनके मन में जाग उठी थी। अतः उन्होंने अपनी रियासत में अद्योगिक संस्थान भी खोला था। यह गायकवाड़ की दूरदर्शिता का ही परिणाम था। उन्हें इस बात का आभास हो चुका था कि अंग्रेज़ भारतियों की भलाई के लिए कुछ नहीं करेंगे। अतः भारत के एक रिसायत के शासक होने के नाते अपने रियासत के लोगों को शिक्षित करने हेतु उन्हें स्वयं ही कदम उठाने की आवश्यकता है। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "अंग्रेज़ कब चाहते थे कि भारत की जनता पढ़-लिखकर कुछ जागरूक बने; और सायाजी राव ने शिक्षा का ही विकास किया था। उन्होंने अपनी रियासत में पुस्तकालय आंदोलन चलाया। अपनी प्रजा को औद्योगिक शिक्षा देने के लिए एक संस्थान खोला। स्त्रियों की शिक्षा और विकास के लिए विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ खोलीं और पिछड़ी जातियों के मार्ग से बाधाएँ हटाकर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त किया। ग्रामों में चिकित्सा के लिए एक योजना आरम्भ की। ये काम सुचारू रूप से हो सके इसके लिए आवश्यक था कि उस पर कड़ी दृष्टि रखी जाए। स्वयं महारानी महिला शिक्षा की संरक्षिका थीं। इससे स्पष्ट था कि सायाजी राव इस विषय में पर्याप्त गम्भीर थे"।[10].. आलोच्य गद्यांश के वर्णित बातों को अगर राष्ट्र निर्माण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता कि सायाजी राव गायकवाड़ एक अत्यंत ही दूरदर्शी शासक थे जिनके मस्तिष्क में यह बात उभरकर आई थी कि अगर अपने देश को एक शक्तिशाली राष्ट्र, एक विकसित देश बनाना है तो देश की जनता को आधुनिक बनाना होगा और यह आधुनिक शिक्षा के माध्यम ही किया जा सकता है। समाज के सभी वर्गों के लोगों को चाहे वह स्त्री हो, पुरुष हो, उच्च वर्ग की जनता हो चाहे निम्न वर्ग की जनता सभी को समान रूप आधुनिक शिक्षा के माध्यम से शिक्षित करने की आवश्यकता है। सायाजी राव गायकवाड़ की यह मान्यता थी कि देश के नव निर्माण में समाज के सभी वर्गों के लोगों का योगदान होना चाहिए।

भारत को एक समृद्धशाली राष्ट्र के रूप में निर्मित करने लिए स्वामीजी भारत के प्राचीन और पश्चिम के नवीम ज्ञान के पक्षपाती थे। भौतिक संसार को छोड़कर आध्यात्मिक

जगत को समझा नहीं जा सकता है। एक को समझने से ही दूसरा समझ में आ सकता है। दोनों का अस्तित्व आवश्यक है।

भारत राष्ट्र के निर्माण को विकसित करने के लिए स्वामीजी पाश्चयत्य ज्ञान एवं भारतीय ज्ञान के मेल के कहाँ तक पक्षपाती है यह बात इस उदाहरण के द्वारा ही समझा जा सकता है। प्रख्यात विद्वान तथा स्वामी विवेकानंद की विचारधाओं के चिंतक शंकरी प्रसाद बसु लिखते हैं कि "विवेकानंद ने निश्चय कर लिया कि वे विदेश में जाएँगे ही रोटी की तलाश में। वह रोटी क्या भिक्षा माँगकर लाना सम्भव है ? नहीं स्वामी विवेकानंद किसी भी परिस्थिति में भिक्षुक नहीं हैं। उन्होंने यह देखा है कि औद्योगीक विज्ञान की उन्नति के अतिरिक्त रोटी की जुगाड़ का और कोई उपाय नहीं है। जनता को यांत्रिक विज्ञान सीखाना होगा। जिससे वह अपने पैरों पर खड़े होकर अपने भोजन की खोज कर सके। पाश्चात्य देश में यांत्रिक विज्ञान की उन्नति हुई है। अतः वहाँ नहीं जाने से कैसे होगा"।[11]..

इस प्रकार भारत राष्ट्र को स्वामी विवेकानंद एक आधुनिक औद्योगीक राष्ट्र के रूप में निर्मित करने हेतु पश्चिम के देशों में विशेष रूप से अमेरिका गए थे। इस विषय में शंकरी प्रसाद बसु आगे लिखते हैं कि "शिकागो धर्म सभा ही स्वामीजी की अमेरिका यात्रा का साक्षात कारण है। किंतु मेरा मानना यह है कि इस संदर्भ में वे दूसरे पाश्चात्य देशों की अपेक्षा अमेरिका जा पाने के कारण वे अधिक प्रसन्न हुए थे।इंग्लैंड की साम्राज्यवादी चरित्र के बारे में उनकी जो तत्कालीन अवधारणा थी उससे वहाँ से सहायता की प्रत्याशा उन्होंने नहीं की थी। वे यह जानते थे कि वैश्य अंग्रेज अपनी जाति के स्वार्थ के लिए भारत का शोषण कर रहे है। उनका अपना निजी स्वार्थ ही भारत में औद्योगीक प्रसार को रोकती है। फिर भी स्वामीजी पाश्चात्य से औद्योगीक विज्ञान सीखकर आना चाहते थे। उनको लगा होगा कि अमेरिका इस विषय में उत्साहित हो सकता है। अमेरिका अगर भारत की औद्योगीक प्रगति न भी करता है फिर भी वह आर्थिक रूप से सहायता कर सकता है। उसकी आर्थिक प्रचुरता और उदारता की कहानी तभी भारत में अच्छी तरह प्रचारित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त अमेरिका नवीन देश है। वहाँ नई धड़कनें हैं। प्राचीन भारतीय विरासत के साथ अगर उस नवीन अमेरिका के उत्साह का मेल हो जाए तो शुभ परिणाम

अवश्यम्भावी है। ऐसी बात भी स्वामीजी के चिंतन में आ सकती है।"[12].. इस प्रकार स्वामी विवेकानंद अपनी मातृभूमि को सुदृढ रूप से निर्मित और विकसित करने हेतु वे अमेरिका की औद्योगीक संस्कृति और सभ्यता के साथ भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को जोड़ना चाहते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में स्वामी विवेकानंद के समय में जब अंग्रेज़ देश में शासन कर रहे थे उस समय राष्ट्र हित की भावना और एक नवीन राष्ट्र के निर्माण की विचारधारा किस सीमा तक विद्यमान थी साथ ही साथ अपने परिव्राजक जीवन में स्वामीजी के जो हितैषी थे जैसे कि मणिभाई आदि व्यक्ति यह भी चाहते थे कि देश के हित और कल्याण के लिए स्वामीजी को बडोदरा भी अवश्य जाना चाहिए क्योंकि गायकवाड़ भी राष्ट्र के नव निर्माण और उसके हित चिंतन में लगे हुए हैं। अतः स्वामीजी के समान एक ज्ञानी पुरुष का उनसे मिलना सर्वथा उचित है। इसी बात को बताने के लिए लेखक नरेंद्र कोहली ने लिखा है कि "वे उन्हें बडोदरा भी भेजना चाहते थे। महाराज सायाजी राव गायकवाड़ से उनका मिलना राष्ट्रीय हित में था। बडोदरा जाए बिना तो स्वामी को आगे बढ़ना ही नहीं चाहिए था"।[13].. आलोच्य गद्यांश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मणिभाई को इस बात का कहीं न कहीं यह ज्ञान हो चुका था कि स्वामीजी केवल आध्यात्मिक जगत के ही एक व्यक्ति नहीं हैं बल्कि उनके मन में राष्ट्रीय हित की भावना, एक विकसित भारत राष्ट्र के निर्माण की भावना भी प्रचुर मात्रा में थी।

भारत में प्राचीन काल में विशेष रूप से पौराणिक काल में सभी स्तरों के लोगों को शिक्षा दी जाती थी। लेकिन मध्यकाल में एक ऐसा दौर आया जिसमें समाज के सभी लोगों को शिक्षा देना बंद कर दिया गया। पठन-पाठन केवल सवर्णों तक ही सीमित था। निम्न जाति के लोगों को पढ़ने की अनुमति नहीं दी जाती थी। निम्न वर्ग की जनता को निम्न कार्य करने के लिए ही आरक्षित रखा जाता था। ऐसी बात नहीं है कि केवल स्वामी विवेकानंद का मन ही निम्न जातियों की शिक्षा के लिए पक्षपाती था समाज की प्रगति के लिए सभी जातियों के लिए शिक्षा को वे अनिवार्य मानते थे बल्कि उस समय में और भी अनेक लोग ऐसे थे जो निम्न जातियों की शिक्षा को भी उच्च जातियों की भाँति अति आवश्यक मानते

थे। उन्हीं में एक हैं स्वामी अखंडानंद जो स्वामी विवेकानंद के गुरुभ्राता थे। इस देश में विभिन्न वर्गों के लोग रहते हैं और सभी को शिक्षा और उन्नत होने होने का अधिकार है। यहाँ जिस घटना के आधार पर बात रखी जा रही है वह घटना उस समय की जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका चले गए थे और उनके गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद एक परिव्राजक के रूप में भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए पश्चिमी भारत राजस्थान के जयपुर के अंतर्गत खेतड़ी के राजा अजितसिंह के यहाँ पहुँचे थे। खेतड़ी में जाने के लिए उनके ही गुरुभ्राता स्वामी विवेकानंद ने ही कहा था। अतः स्वामी अखंडानंद खेतड़ी चले गए थे। उन्हें स्वामीजी का एक पत्र भी प्राप्त होता है जिसमें खेतड़ी की जनता को स्वामी विवेकानंद ने संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने की बात कही थी। साथ ही स्वामीजी ने स्वयं भी अपने गुरुभ्राता को संस्कृत का अध्ययन जारी रखने को कहा। क्योंकि स्वयं अगर सदैव अध्ययन रत नहीं रहा जाएगा तो लोगों को किस प्रकार से शिक्षित क्या जाएगा। स्वामी विवेकानंद ने चूँकि अपने गुरुभ्राता अखंडानंद को लोगों को शिक्षित करने का कार्यभार सौंपा था अतः खेतड़ी राज्य में अब उनका पहला काम था वहाँ के लोगों को शिक्षित करना क्योंकि शिक्षा के बिना राष्ट्र की प्रगति नहीं हो सकती। स्वामीजी के आदेश से खेतड़ी राज्य में शिक्षा के प्रसार के लिए राजा अजितसिंह सहायता करने के लिए तैयार हो गए। खेतड़ी पिछड़ा हुआ प्रदेश नहीं था। यह एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ विद्यालय की भी स्थापना हो चुकी थी। यह इस क्षेत्र के लिए बहुत आश्चर्य का विषय था कि लोगों के मन में यह अवधारणा थी कि अध्ययन और अध्यापन पठन-पाठन की कोई उपयोगीता नहीं है। यह देखकर अखंडानंद को बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ। ऐसी बात भी नहीं थी कि वहाँ शिक्षकों की कमी थी बल्कि प्रशासन के द्वारा अच्छे शिक्षकों की नियुक्तियाँ भी हो चुकी थीं। लेकिन इस स्थान में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या बहुत ही कम थी। अखंडानंद को इसका कारण ही समझ में नहीं आ रहा था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो शिक्षा को ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि विपुल धन-सम्पत्ति अर्जित करने का एक माध्यम समझते थे। भारत के लोग शिक्षित होकर अपने क्षेत्र का विकास नहीं करते हैं बल्कि वे और भी उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त करने के लिए और भी दूर चले जाते हैं। आलोच्य उपन्यास में लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि “धनी-मानी ठाकुरों के लड़के या तो अजमेर के मेओ कॉलेज जैसी संस्थानों में

चले जाते थे। शिक्षा का उनके लिए कोई महत्व नहीं था"।[14].. आलोच्य गद्यांश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ऐसे लोग जो शिक्षित हो चुके हैं उनके मन में स्वार्थ की भावना निहित है। वे देश और समाज के अन्य लोगों के विषय में कभी नहीं सोचते हैं उनके लिए केवल निजी स्वार्थ ही महत्वपूर्ण होता है। वे ऐसे लोग हैं जिन्हें अपने देश और समाज से जुड़े हुए अन्य लोगों की कोई चिंता नहीं होती। आलोच्य गद्यांश में धनी वर्ग के ठाकुर के लड़के कहीं न कहीं ऐसे ही वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। साथ ही साथ वे इस देश के उस वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई दे रहे हैं जो स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अन्य बड़ी शिक्षण संस्थानों में चले जाते हैं किंतु अपने देश या प्रांत के सामान्य लोगों का चिंतन नहीं करते हैं। इस परिस्थिति में जमीनी हक़ीक़त जानने के लिए स्वामी अखंडानंद ने जब एक लड़के से यह पूछा कि वे लोग पढ़ने के लिए विद्यालय क्यों नहीं जाते हैं ? तो उस बालक का कहना था कि "दरोरा जाति के हैं। खेतड़ी में हमारी जाति के सैकड़ों घर हैं। हर घर में चार-पाँच लड़के तो हैं ही, पर हममें से कोई पाठशाला नहीं जाता"।[15].. अखंडानंद ने जब यह पूछा कि इस प्रांत में ऐसी स्थिति क्यों है। तब लड़के का यह कहना था कि उनके क्षेत्र की यहीं प्रथा है। इस बात को सुनकर स्वामी अखंडानंद ने दरोरा जाति के लोगों से मिलकर उनकी पंचायत बुलाई और उन्होंने जब यह बात पंचायत के लोगों को बताई तो मुखिया ने उनसे जो कहा यह भी ध्यान देने लायक़ है। "क्या लाभ ? पाँच साल का होते-होते बच्चा राजपरिवार अथवा अधिकारियों की सेवा का कार्य पा लेता है। जब उसे उस कम अवस्था में ही आजीविका मिल गई तो फिर पढ़-लिखकर क्या होगा"।[16].. स्वामी अखंडानंद ने जब यह जानना चाहा कि बच्चों को किस प्रकार की सेवाएँ मिलती हैं तो उन्हें यह बताया गया कि चरण सेवा करना, बर्तन धोने का कार्य करना, मैले वस्त्र धोना। यह भी बताया गया है कि उनके बच्चों को कोई भी सेना में भर्ती नहीं करेगा। अखंडानंद ने जब यह जानना चाहा कि दरोरा जाति के लोगों के साथ ऐसा आचरण क्यों किया जाता है ? उनके पढ़ने-लिखने का विरोध क्यों किया जाता है ? तो मुंशीजी का कहना था कि "महाराज ! यदि वे भी पढ़-लिखकर अधिकारी हो जाएँगे, तो राजा और

ठाकुरों की सेवा के लिए चाकर कहाँ से आएँगे"।[17].. यानी कि जो राजनेता हैं वहीं कहीं न कहीं अनैतिक गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। राजनैतिक नेता या सत्ता पर बैठे लोग देश के सामान्य लोगों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करते हैं।

इस प्रकार की बातों को अखंडानंद को मुंशीजी द्वारा बत्या गया और मुंशी ने राजा से इस विषय में चर्चा की। मुंशी का कहना था कि उन्हें पढ़ने-लिखने की योग्यता प्राप्त करने से पूर्व ही रोज़गार के काम में लगा दिया जाता है। राजा को यह भी बताया गया है कि इन्हें शिक्षा से वंचित रखा गया है। लेकिन राजा को यह बात बताया ही नहीं गया है। अर्थात् कभी-कभी शासक वर्ग के ऊँचे अधिकारियों को या शासक वर्ग के वरिष्ठ राजनेताओं को इस बात की जानकारी तक नहीं होती उसके निचले स्तर के कर्मचारी देश की आम जनता के साथ किस प्रकार का आचरण कर रहे हैं। उनके जो अधिकार हैं उनका हनन किया जा रहा है। लेकिन जब किसी बड़े अधिकारी या शासक वर्ग को इस बात की जानकारी होती है और अगर वह सज्जन व्यक्ति है, जनता का हित चिंतक शासक है, चाहे वह राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था से जुड़ा हुआ हो या प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था से वह इस विषय में देश की जनता के हित को ध्यान में रखते हुए कड़ी कार्यवाही करता है। खेतड़ी के राजा अजितसिंह को मुंशीजी से यह पता चलता है कि प्रशासन से ही दरोरा जाति के लोगों को शिक्षा से वंचित रखा गया है। मुंशीजी राजा से कहते हैं कि "अभी तक तो राज्य की ओर से ही दरोरा जाति के लिए शिक्षा वर्जित है"।[18]..

राजा अजितसिंह को जब यह ज्ञात होता है तो वे इस आदेश को निरस्त कर देते हैं। वे कहते हैं कि "आज से इसी क्षण से वह आज्ञा निरस्त की जा रही है। दरोरा जाति के लोगों को भी अपने बच्चों को शिक्षित करने का उतना ही अधिकार होगा, जैसा कि अन्य जातियों को है। राज्य के स्कूलों को तत्काल आदेश जारी किया जाए कि वे विद्यार्थियों के प्रवेश के समय उनकी जाति के आधार पर उन्हें नहीं रोकेंगे"।[19].. यानी कि एक सच्चा और जनहितकारी शासक जो होता है वह यह सोचता है कि प्रशासन की नीतियों में देश के सभी वर्गों की जो जनता है उसका समान अधिकार है। सरकारी योजनाएँ किसी की बपौती सम्पत्ति नहीं होती। उस पर सभी लोगों का समान अधिकार होता है। राजा अजितसिंह

को इस बात का बोध था कि अगर किसी देश की सभी वर्गों की जनता समान रूप से शिक्षित न हो तो सम्पूर्ण राष्ट्र का निर्माण एक विकसित राष्ट्र के रूप में नहीं हो पाएगा। आज यह जो कहा जा रहा है शिक्षा जाति आधारित नहीं होनी चाहिए। तत्कालीन समय में राजा अजितसिंह को इस बात का आभास हो चुका था। शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों की योग्यता को ही महत्व दिया जाना चाहिए उनकी जाति को नहीं। भारत को एक सुविकसित और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में निर्मित करने के लिए शिक्षा की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः इससे किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण केवल उस देश में निवास करने वाले उच्च वर्ग के माध्यम से ही नहीं सकता बल्कि उस देश के समस्त वर्गों के सह अस्तित्व के माध्यम राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। परिणाम स्वरूप जहाँ तक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की बात है उसे खेतड़ी के राजा अजितसिंह ने दरोरा जाति के लिए भी संचालित कर दिया। यहाँ यह भी देखते हैं कि प्रशासन के जो ऊँचे अधिकारी हैं वे इन दरोरा जाति के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के उनके जो मौलिक अधिकार हैं उससे वंचित रखना चाहते हैं। राजा अजितसिंह को जब अपने मुंशीजी से इस बात की सूचना मिलती है तब वे एक बड़ी अच्छी बात कहते हैं कि "उच्च अधिकारी किसी के भाग्य विधाता नहीं हो सकते"।[20]..

जब राजा यह जानना चाहते हैं कि इन लोगों को शिक्षा के आलोक से वंचित करने के पीछे किन लोगों की भूमिका है तो उन्हें यह ज्ञात होता है कि इस प्रकार के कार्य को अंजाम देने के पीछे राजा के ऊँचे अधिकारी ही हैं और कोई नहीं। इसे सुनकर राजा का यह कहना था कि ऊँचे अधिकारी किसी भी व्यक्ति के भाग्य विधाता नहीं हैं। अतः वे किसी के भाग्य का निर्णय नहीं कर सकते हैं। राजा ने न केवल दरोरा जाति के बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की बल्कि उनके लिए हफ़्ते में छः दिन विद्यालय संचालित होने के दौरान उन्हें निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की। केवल किसी हफ़्ते में छः दिन ही क्यों बल्कि सालभर मुफ़्त शिक्षा प्रदान की जाएगी। इतना ही नहीं दोपहर के समय जब वे विद्यालय में रहेंगे तब प्रत्येक दिन दोपहर का भोजन भी उन्हें मुफ़्त प्रदान किया जाएगा इसके लिए छात्रों के निजी परिवारों से एक भी पैसा नहीं दिया जाएगा। सारा प्रबंध राजकोश के माध्यम से ही किया जाएगा। यह भी नियम बना दिया गया कि जिन परिवारों के पास बच्चों की

पुस्तकें ख़रीदने हेतु पैसों का अभाव है उनकी सहायता के लिए भी एक अलग कोश का निर्माण किया गया। जिसमें उन बच्चों के पठन-पठन के लिए पुस्तकों की व्यवस्था थी।राजा के निर्णय के अनुसार कोश का निर्माण भी कर दिया गया और प्रावधान यह रखा गया कि अगर कोई धनी व्यक्ति इस कोश में अपना योगदान देना चाहता है तो उसका हार्दिक स्वागत है। इस प्रकार की व्यवस्था के माध्यम से खेतड़ी राज्य की दरोरा जाति के लोगों में स्वयं को शिक्षित करने की एक ललक जाग उठी और इस जाति के लोगों में शिक्षा का स्तर बढ़ने लगा। दारोरा जाति के लोगों को शिक्षित करते हुए भारत को एक शिक्षित राष्ट्र के रूप में निर्मित करने में न केवल स्वामी विवेकानंद की ही महत्वपूर्ण भूमिका थी बल्कि उनके गुरुभ्राता स्वामी अखंडानंद, खेतड़ी के राजा अजितसिंह, मुंशीजी आदि सभी व्यक्तियों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

बात जब राष्ट्र के निर्माण की होती है तब राष्ट्र भाषा को छोड़कर इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अगर देश की भाषा के प्रति मन में प्रेम और श्रद्धा की भवना निहित होगी तभी राष्ट्र का निर्माण और उसका विकास सुचारू रूप से हो पाएगा। स्वामी विवेकानंद हिंदी भाषा के प्रति अत्यंत ही श्रद्धाशील थे। वे अपनी मातभाषा बंगला के प्रति जितने अधिक श्रद्धाशील थे उतने ही अधिक श्रद्धाशील वे हिंदी भाषा के प्रति भी थे। राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से अगर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि अगर किसी व्यक्ति के मन में अपने देश की भाषाओं के प्रति श्रद्धा और प्रेम की भावना नहीं है तो वह व्यक्ति राष्ट्र के निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकता। स्वामीजी भारत राष्ट्र के वास्तविक निर्माता हैं। जो व्यक्ति अपने देश की भाषा से प्रेम कर सकते हैं वे ही तो राष्ट्र के वास्तविक निर्माता हो सकते हैं।यहाँ जिस घटना के आधार पर मैं यह बात कह रहा हूँ यह घटना उस समय की है जिस समय स्वामीजी एक परिव्राजक बनने के बाद सम्पूर्ण भारत भारतवर्ष का भ्रमण करते निकले थे और भ्रमण करते हुए महाराष्ट्र के कोल्हापुर के वकील भाटे के साथ हरिपद मित्र नामक एक व्यक्ति के घर पहुँचे थे तो भाटे भी उनके साथ गए थे। स्वामी चूँकि बंगाली थे अतः हरिपद की इच्छा थी कि जो भी वार्तालाप हो वह बंगला में ही होना चाहिए। अगर भाटे साहब को असुविधा हो तो बातचीत अंग्रेजी में भी की जा सकती है। लेकिन स्वामीजी न तो अंग्रेजी में वार्तालाप करने के इच्छुक थे और न ही बंगला

में। वे बातचीत केवल हिंदी भाषा में करना चाहते थे। उनके अनुसार "भाटे साहब को असुविधा न हो, इसलिए बंगला में बात नहीं करेंगे ; किंतु अंग्रेजी में क्यों, हिंदी में क्यों नहीं ? बंगाल से बाहर भिन्न भाषा-भाषियों को अंग्रेजी में नहीं हिंदी में बात करनी चाहिए। हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा है"।[21].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद राष्ट्र भाषा हिंदी के प्रबल समर्थक थे। स्वामीजी की अपनी देश भक्ति के कारण ही उन्हें इस बात का आभास हो चुका था। हिंदी हमारे देश की राष्ट्र भाषा है। इस भाषा को देश के सभी क्षेत्र के लोग समझते हैं। विख्यात संगीतज्ञ पण्डित विष्णु दिगम्बर पुलसकर ने एक बार कहा कि 'एक दिन हिंदी ही भारत की राष्ट्र भाषा बनेगी'। ऐसी विचारधारा वहीं व्यक्तिगण ही रख सकते हैं तो अपनी मातृभूमि के प्रति तथा उसकी भाषा और संस्कृति के प्रति वास्तविक श्रद्धा रखते हैं। स्वामी विवेकानंद हों या स्वामी अखंडानंद हों या स्वामीजी के समकालीन संगीतज्ञ पण्डित विष्णु दिगम्बर पुलसकर जैसे विद्वान ही राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

राष्ट्र निर्माण के विषय में आध्यात्मिकता की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ यह बताया जा रहा है कि स्वामी अभेदानंद के मन में एक विचार आता है कि स्वामीजी का मन हिंदुओं के जागरण के लिए अत्यंत ही चिंतित हो उठा था। लेखक लिखते हैं कि "अभेदानंद को लगा कि स्वामी इस समय एक धधकती ज्वाला के समान थे। हिंदुओं की आध्यात्मिक उत्थान के विचारों से उनकी आत्मा तिलमिला रही थी"।[22]..

अगर इन बातों को राष्ट्र निर्माण के आधार पर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण या विकास सुचारू रूप से तब तक नहीं हो सकता जब तक उस देश में निवास करने वाली जातियों और उनके धर्मों का विकास नहीं हो सकता। इस गद्यांश में वर्णित बातों को अगर हिंदूधर्म या सनातनधर्म की दृष्टि से देखा जाए तो ब्रिटिश सरकार पराधीन भारतवर्ष में हिंदूधर्म को और हिंदू दर्शन को सदैव नीचा दिखाने का प्रयास किया करती थी और भारत की तब तक की प्रगति को अंग्रेज़ों और अन्य विदेशियों का दान मानती थी। भारत और हिंदुओं की अपनी कोई सभ्यता नहीं है। यह बड़ी चिंता का विषय है कि विश्व के प्राचीन धर्म हिंदूधर्म को उसी धर्म की उत्पत्ति क्षेत्र में

विदेशियों के द्वारा बार-बार अपमानित किया जा रहा है। अंग्रेज़ हिंदुओं के धर्म का अपमान किन शब्दों में किया करते थे इस बात का उल्लेख करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने 'न भूतो न भविषयति' नामक उपन्यास यह स्वामी विवेकानंद के ही कर्म और उनके संघर्ष को दर्शाते हुए लिखा है। इसमें लेखक लिखते हैं कि "रविवार के दिन प्रातः ही हेडो तालाब के किनारे, एक गोरा पादरी सड़क पर भाषण की मुद्रा में खड़ा था। वह मदारी के समान भीड़ इकट्ठी हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। छितरे-छितरे से लोग इधर से उधर आते-जाते दिखाई पड़ रहे थे। कुछ उसके निकट आ गए थे। कुछ उत्सुकता से उसकी ओर देख रहे थे। सहसा पादरी बोला, हमारा ईश्वर इस संसार को बनाता है। सूरज, चाँद और सितारे बनाता है।इस सारी कयानत को बनाता है ; और हिंदुओं के ईश्वर को बनाता है इनका कुम्हार। वह गंदा कुम्हार अपने पैरों से रौंधकर इस गंदी मिट्टी से एक घटिया सी मूर्ति बना देता है और हिंदू उसकी पूजा करने लगते हैं। उसके सम्मुख माथा टेकने लगते हैं। वह उनका ईश्वर है। हिंदू का धर्म राक्षसों का अघोर तंत्र। पति अपनी पत्नी को प्रतिदिन पीटता है। किसी दिन अधिक क्रोध आ जाए तो उसे जीवित जला देता है। वह नहीं जलाता तो उसकी मृत्यु के बाद, उसके सम्बंधी उसकी पत्नी को सती बनाने के नाम पर जीवित जला देते हैं। यह कोई धर्म है ?"[23]..

स्वामी विवेकानंद जैसे एक सच्चे देश भक्त को एक विदेशी व्यक्ति द्वारा भारत, हिंदूधर्म और हिंदुओं की संस्कृति का इस प्रकार का अपमान सुनकर बड़ा दुःख हुआ। साथ ही साथ उनके मन में क्रोध और विरोध की भावना भी जाग उठी थी। यह एक वास्तविक देश भक्त और राष्ट्र के निर्माता का चरित्र था। स्वामी विवेकानंद जो अभी एक बालक ही थे उनका मन बड़ा विचलित हो चुका था। उनके मन की देशभक्ति ने उनके भीतर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रांति की भावना जगा दिया था। अपनी मातृभूमि के प्रति श्रदा और भक्ति तथा उस छोटी-सी उम्र में ही देश का वास्तविक और प्राचीन मूल इतिहास तथा संस्कृति की जानकारी रखने वाले विवेकानंद के मन में उस अंग्रेज़ पादरी के प्रति एक तीव्र विरोध और घृणा की भावना जाग उठी थी। उन्होंने एक सच्चे देश भक्त के रूप में तत्काल अपना विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिया। एक देशभक्त के रूप में बालक विवेकानंद के विरोधी

तेवर का वर्णन करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली ने लिखा है कि "अब नरेंद्र स्वयं को रोक नहीं पाया। उसने पादरी को तीखी दृष्टि से देखा, पादरी को घेरकर खड़े, उसकी बातें सुन रहे लोगों पर भी एक दृष्टि डाली : और फिर भीड़ को धकियाता-सा उस पादरी के सामने जा खड़ा हुआ, क्या प्रत्येक हिंदू पति अपनी पत्नी को जीवित जला देता है ? इतनी सारी सुहागिनें जीवित कैसे हैं ? नरेंद्र ने उसे डाँटा, सारी विधवाओं को जीवित जला दिया जाता है तो तीर्थस्थलों और मंदिरों में इतनी सारी विधवाओं की भीड़ कहाँ से आ जाती है ? कुछ मूर्खों के दुष्कर्मों के कारण तुम सारे हिंदू समाज को कलंकित कर रहे हो। जो जलाता है उस अपराधी को दंडित न करवाकर तुम सारे धर्म को कलंकित कर रहे हो। नरेंद्र उग्र हो उठा, अंग्रेजों को शराब पीते देखकर हमने तो कभी ईसा को मदिरापान का समर्थक नहीं कहा"।[24]...

अब बात यह आती है कि जब वे एक सन्यासी के रूप में परिव्राजक बनकर भारत के पश्चिमी प्रांत में बसे हुए गुजरात राज्य में पहुँचे थे और कुछ दिनों के बाद उनके गुरुभ्राता स्वामी अभेदानंद भी जब एक परिव्राजक के रूप में देश भ्रमण करते हुए गुजरात पहुँचे थे और नरोत्तमदास मुरारजी गकुलदास के आवास में गए तो वहाँ स्वामी अभेदानन्द ने अपने गुरुभ्राता स्वामी विवेकानंद के साथ हिन्दू धर्म पर बातचीत करते हुए उन्हें हिन्दुओं के आध्यात्मिक उत्थान के विषय में काफी चिंताग्रस्त क्यों देखा ? अब स्वामीजी की चिंता का विषय यह था कि अंग्रेज़ सरकार द्वारा उस समय की निरीह तथा भोली-भाली और अशिक्षित जनता को उनके अपने ही देश में अपनी ही संस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध जिस प्रकार से उल्टा-सीधा समझाया जा रहा था यह चिंता का विषय था। यह दृश्य उन्होंने अपने बचपन में कलकत्ता महानगर में पहली बार देखा था जब एक ईसाई पादरी इस देश की सामान्य हिंदू जनता को उनकी अज्ञानता के कारण किस प्रकार हिंदूधर्म के प्रति बहका रहा था और उन्होंने उस पादरी के इस कृत्य का विरोध किया था। इस समय भी देखा जाए तो अंग्रेज़ वही कर रहे थे। अंग्रेज़ी हुकूमत लागातार इस देश की हिंदू जनता को नीचा दिखाने का प्रयास कर रही थी। अंग्रेज़ों का भारतीय जनता के प्रति इस प्रकार के आचरण

से एक शक्तिशाली भारत राष्ट्र के निर्माण में बाधा पहुँचेगी। भारत एक आध्यात्मिक देश है। आध्यात्मिकता इस देश का प्राण है। आध्यात्मिकता के बिना तो भारत राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यह प्राचीन मुनि-ऋषियों की भूमि है जो आध्यात्मिक जागरण को ही इस सम्पूर्ण भारतवर्ष के जागरण का न केवल भारत के जागरण का बल्कि सम्पूर्ण विश्व के जागरण का मूल मंत्र मानते थे। परिणाम स्वरूप स्वामी विवेकानंद जब देश का भ्रमण करते हुए भारत के पश्चिमी प्रांत में स्थित गुजरात प्रदेश में पहुँचे थे तो हिंदुओं के आध्यात्मिक जागरण के लिए उनका मन काफ़ी चिंतित दिखाई दे रहा था। स्वामीजी को यह लग रहा था कि हिंदुओं के भीतर आध्यात्मिक जागरण को जगाए बिना इस देश के नव निर्माण की परिकल्पना कभी नहीं की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति जब तक अपने धर्म के बारे में, सभ्यता के बारे में, संस्कृति के बारे में जान ही नहीं पाएगा जब तक उसके भीतर इस विषय में कोई जागृति ही नहीं आएगी तो वह अपने देश का निर्माण कैसे कर पाएगा।

मनुष्य जिस राष्ट्र में रहते हैं यह उनका कर्तव्य है कि वे उस राष्ट्र का निर्माण एक शक्तिशाली और समृद्धशाली राष्ट्र के रूप में करें। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में उस देश की समस्त जनता की ही बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चाहे वह सामान्य जनता हो, देश के राजनेता हों, उस देश के आध्यात्मिक जगत से जुड़े हुए साधु-संत या सन्यासी हों सभी के सह-अस्तित्व से ही राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। कदाचित यहीं कारण है कि स्वामी विवेकानंद जब अपने परिव्राजक जीवन में भारत का भ्रमण करते हुए देश के पश्चिमी प्रांत में बसे हुए गुजरात प्रदेश में गए तो वहाँ उन्होंने सायाजी राव गायकवाड़ से मुलाक़ात की और बातचीत के दौरान जब सायाजी ने जब स्वामीजी से यह पूछा कि वे क्या शिक्षाविद हैं ? तब स्वामीजी ने उनसे कहा कि “मैं एक सन्यासी हूँ। किंतु सन्यासी भगवान का चिंतन करते हुए, भगवान के बनाए हुए, जीवों के हित का चिंतन करता है। अतः शिक्षा के विषय सोचना आवश्यक है”।[25]..

किसी भी देश या राष्ट्र के नव निर्माण में केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि उस राष्ट्र में निवास करने वाली जो सर्वस्तरीय जनता है चाहे वह किसी भी वर्ग, समाज या भाषा का क्यों न हो सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्र निर्माण एक सामूहिक कर्तव्य है। जब राष्ट्र

निर्माण एक सामूहिक कर्तव्य है तब सन्यासी या साधुजन उस कार्य से स्वयं को सर्वथा अछूता कैसे रख सकते हैं। वे कभी भी स्वयं को इससे अछूता नहीं रख सकते। सन्यासी इस संसार के समस्त जीवों के हित का चिंतन करता है। सदैव लोगों के हित के विषय में चिंतन करना भी राष्ट्र के निर्माण का ही अंश है।मनुष्य को अगर समाज का हित करना ही है तो उसे सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों को शिक्षित करना होगा। इसके बिना राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं है। सन्यासी ऋषि जो हैं उनके लिए लेखक ने "बुद्धिजीवी" शब्द का प्रयोग किया है। लेखक ने अपने रामकथपरक उपन्यास अभ्युदय भाग 1 में ऋषियों और मुनियों के लिए बुद्धिजीवी शब्द का प्रयोग किया है। इस दृष्टि से अगर देखा जाए तो स्वामी विवेकानंद चूँकि एक सन्यासी है अतः वे भी समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के अंतर्गत आने वाले एक व्यक्ति हैं। अतः देश का बुद्धिजीवी वर्ग होते हुए यदि कोई सन्यासी या ऋषि देश की जनता की शिक्षा के विषय में चिंतन नहीं करेगा या इस सिलसिले में अपनी ओर से कोई भी पहल करने का प्रयास नहीं करेगा तो देश के अन्य लोगों को इस विषय में प्रेरणा कैसे प्राप्त हो पाएगी। देश के सभी स्तरों के लोगों में जागरूकता कैसे फैलेगी। यहाँ श्रीमद् भगवत गीता की एक उक्ति का उल्लेख करना आवश्यक है। इस उक्ति में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि 'श्रेष्ठ और देवतुल्य व्यक्ति जिस प्रकार का आचरण करते हैं और वे जिन बातों को, जिन विचारधाराओं को प्रमाण स्वरूप सामान्य जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं उन्हें ही सामान्य जनता अपनाती है। उन्हीं विचारधाराओं का अनुसरण करते हुए जनता अपने जीवन का संचालन करती है'। अतः एक बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के कारण देश का जो सन्यासी वर्ग है उसे आगे आना ही चाहिए। अतः स्वामीजी राष्ट्र निर्माण के लिए आगे आते हैं और भारत के सभी वर्गों के लोगों को शिक्षित करने की बात करते हैं।

किसी भी राष्ट्र का निर्माण उस राष्ट्र में निवास करने वाले लोगों के द्वारा किया जाता है। किसी भी राष्ट्र को सुचारू रूप से निर्मित करने के लिए उसके प्रति निवासियों के मन में श्रद्धा और भक्ति की भावना निहित होनी चाहिए। अपने देश की रक्षा के लिए सदैव स्वयं को समर्पित करने के लिए तैयार रहना चाहिए। देश पर अगर कभी भी किसी भी प्रकार का संकट आए तो अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।

अगर कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेश में रहता है तो वह रह ही सकता है लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है वह अपने देश की संस्कृति को, देश को भूल जाए और वह जिस देश में निवास कर रहा है वह सम्पूर्ण रूप से उसी देश का ही बनकर रह जाए। यहाँ बात राष्ट्र निर्माण को लेकर की जा रही है तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकता। इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति विदेश में रहता है इसका मतलब यह नहीं है कि वह सम्पूर्ण रूप से उसी देश का हो गया। एक वास्तविक देशभक्त ऐसी कल्पना कभी भी नहीं कर सकता है। कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आती है जब व्यक्ति के अपने ही लोग उसे अपने देश और संस्कृति से अपने निजी स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए उसे दूर रखना चाहते हैं। इस प्रकार के स्वार्थी लोगों के माध्यम से देश या वतन का निर्माण नहीं किया जा सकता है। तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के पंचम खंड में ओली बुल के साथ भी उनकी सास ने ऐसा ही किया। अपने विवाह के उपरांत ओली बुल अपने देश नार्वे चले जाना चाहते थे लेकिन ओली बुल की सास उन्हें नार्वे नहीं जाने देना चाहती थी वह उन्हें अपने ही अधीन रखने के लिए उन्हें आजीवन अमेरिका में ही बसाए रखना चाहती थी। इतना ही नहीं वह अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपनी पुत्री और दामाद को अपने नगर मेंडिसन ले जाकर सदा के लिए बसाना चाहती थी। ओली बुल इसके लिए तैयार नहीं थे। अगर कोई व्यक्ति अपने ही किसी सगे सम्बंधी की पराधीनता के भीतर निवास करेगा तो वह कभी भी राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकता। क्योंकि जब वह स्वयं ही स्वतंत्र नहीं है तब वह स्वतंत्र रूप से अपने राष्ट्र के नव निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वाह किस प्रकार कर पाएगा। आलोच्य उपन्यास में ओली बुल का चरित्र एक सच्चे देशभक्त के रूप में उभरकर आता है। भले ही वे अपनी आजीविका के कारण अमेरिका में रह रहे हैं लेकिन उन्हें अपना वतन नार्वे बहुत ही प्यारा है। लेखक नरेंद्र कोहली के शब्दों में कहें तो "अपने देश और अपने नगर के नाम पर वे नार्वे की बात करते थे। उनकी दृष्टि में अमेरिका में रहना और अमरीकी हो जाना दोनों पृथक बातें थीं। और श्रीमती थार्फ उन लोगों को मेडीसन के खूँटे से बाँध देना चाहती थी। दोनों में किसी प्रकार का समझोता नहीं हो रहा था"।[26]..

जो सच्चा देशभक्त है वह इस संसार के किसी भी प्रांत में चाहे रहे लेकिन उसका

हृदय अपने ही देश के प्रति डूबा हुआ रहता है। वह अपने देश को कभी भी भूल नहीं पाता है। ओली बुल ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उन्हें अपने ही रिश्तेदार ने पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ रखा था। अगर किसी व्यक्ति को अपने ही लोग पराधीनता की बेड़ियाँ पहनाकर रख देते हैं तो वह व्यक्ति देश का निर्माण किस प्रकार कर सकता है। जो किसी व्यक्ति के अपने लोग है उन्हें उसके कार्य में सहायता करना चाहिए। श्रीमती थार्फ केवल अपने स्वार्थ को ही महत्व देती है और इसे ही सिद्ध करने के लिए वह अपने दामाद और पुत्री को अमेरिका में रख देने का प्रयास करती है। इस प्रकार के लोग अगर किसी भी देश में रहेंगे तो किसी भी देश का निर्माण नहीं होगा। देश का चारित्रिक गठन नहीं होगा। लेखक नरेंद्र कोहली के शब्दों में कहूँ तो "राष्ट्र निर्माण राष्ट्र के चरित्र का निर्माण है"।[27]..

लेखक नरेंद्र कोहली की मान्यता है कि 'विवेकानंद से कई लोगों ने कहा कि क्या बात है भाई देश की स्वतंत्रता नहीं चाहते आप ? विवेकानंद का कहना था अगर आप चाहें तो देश आज ही स्वतंत्र हो जाएगा लेकिन आपका चरित्र अगर ऐसा ही रहा तो'। यानी कि जनता को सर्वप्रथम अपने चरित्र का निर्माण करना चाहिए। चरित्र ही मूल वस्तु है। अगर उसमें दरार उत्पन्न होती है तो मनुष्य अपने इस अमुल्य जीवन में मूल्यवान वस्तुओं का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। चरित्रवान होने का एक अर्थ यह है कि लोगों को मिथ्यावादी नहीं होना चाहिए। उसे अत्याचारी नहीं होना चाहिए। अगर किसी भी देश का कोई व्यक्ति अन्यायी है, झूठा है तो वह चरित्रवान नहीं है और वह किसी राष्ट्र का निर्माण भी सुचारू रूप से नहीं कर सकता। अतः सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने चरित्र के निर्माण की ओर सर्वदा ध्यान देना चाहिए। अगर व्यक्ति के चरित्र में सुधार हो गया तो वह इस संसार की छोटी से छोटी वस्तु भी प्राप्त कर लेगा। लेकिन अगर कोई व्यक्ति चरित्रवान नहीं होगा तो उसे छोटी से छोटी वस्तु भी प्राप्त करने में कठिनाई होगी। स्वामीजी की यह मान्यता थी भारतवर्ष के लोगों की पहचान उनके चरित्र के माध्यम से होती है। यह बात उन्होंने एक अमरीकी महिला से तब कहा था जब उस महिला ने स्वामीजी से यह कहा था कि "Why don't you wear coat pant to like a gentle man" ?[28].. इसी प्रश्न के उत्तर में

स्वामीजी ने कहा था कि 'आपके देश में व्यक्ति की पहचान उसकी वेशभूषाओं के माध्यम से होती है लेकिन मेरे देश मे व्यक्ति की पहचान उसके चरित्र के माध्यम से होती है'।

लेखक नरेंद्र के अनुसार "समाज का वृहद रूप ही तो राष्ट्र है। अगर आप पंजाबी समाज, बंगाली समाज कहेंगे तो उसका अर्थ तो सीमित हो गया। लेकिन अगर आप भारतीय समाज कहेंगे तो सारा भारत आ गया न उसमें, राष्ट्र आ गया"।[29]..

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र निर्माण का अर्थ हुआ सम्पूर्ण भारतीय समाज का निर्माण। भारत एक बहुभाषी एवं बहुधर्मी राष्ट्र है। भारत की यह शिक्षा रही है कि सदैव एक मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में ही देखना चाहिए न कि उसे जाति, भाषा और धर्म आदि के आधार पर देखना चाहिए। भारत ने सदैव धर्म निरपेक्षता को बल दिया है। राष्ट्र निर्माण में साम्प्रदायिकता को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। जब तक मन से साम्प्रदायिकता की भावना दूर नहीं होगी तब तक राष्ट्र का निर्माण नहीं हो पाएगा क्योंकि देश किसी एक समुदाय या समाज से जुड़े हुए लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है बल्कि सभी को इस बात का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि यह सामूहिक सम्पत्ति है। अतः राष्ट्र के प्रत्येक समाज से जुड़े हुए व्यक्ति का जब विकास होगा तभी भारतवर्ष का निर्माण एक शक्तिशाली और समृद्धशाली राष्ट्र के रूप में हो पाएगा। स्वामी विवेकानंद जब अपने परिव्राजक जीवन में भारत के पश्चिमी प्रांत के राजपूताना राज्य वर्तमान राजस्थान में भ्रमण कर रहे थे तब खेतड़ी के राजा अजितसिंह से बातचीत करते हुए उन्होंने बताया था कि बात जहाँ तक शिक्षा की है उसे राष्ट्रीय आंदोलन में परिवर्तित करना होगा और इस प्रक्रिया के माध्यम से केवल दस वर्षों के भीतर उस लक्ष्य को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है जिसे हज़ार वर्षों में भी प्राप्त नहीं किया जा सकता या प्राप्त करना सरल नहीं है। स्वामीजी ने राजा से यह कहा था कि क्या वे इस राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत कर सकते हैं? उन्हें इस आंदोलन को अवश्य ही शुरू करना चाहिए। स्वामीजी यह बात जानते थे कि राजा अजितसिंह एक अत्यंत ही सज्जन व्यक्ति हैं और शिक्षा या पठन-पाठन जो है वह ज्ञान का प्रतीक है। यह ज्ञान का आलोक है। अतः इस आलोक का आंदोलन एक सज्जन पुरुष के हाथ में ही होना चाहिए नहीं तो आंदोलन विनष्ट हो जाएगा। शिक्षा को राष्ट्रीय आंदोलन

में परिणत करने से राष्ट्र का निर्माण सुचारू रूप से हो पाएगा। एक बात अवश्य ही ध्याय देना आवश्यक है कि स्वामी विवेकानंद भगवान में और अपनी मातृभूमि में कोई अंतर नहीं मानते थे। ऐसे व्यक्तियों के माध्यम से ही राष्ट्र का निर्माण सुचारू रूप से हो सकता है जिनकी दृष्टि में देशमाता और भगवान में कोई कोई अंतर नहीं है। दोनों एक ही हैं।

अगर व्यक्ति के मन में सम्पूर्ण भारत को एक सर्व समृद्ध राष्ट्र के रूप में निर्मित करने की परिकल्पना है तो उसे अपने दायरे को केवल एक जाति, समाज आदि तक कभी भी सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि उसको सम्पूर्ण भारतवर्ष तक विस्तृत कर देना चाहिए। उसको केवल एक निर्धारित प्रांत का या समाज से जुड़ा हुआ न मानकर सम्पूर्ण भारतवर्ष से जुड़ा हुआ ही स्वीकार करना चाहिए तभी भारत के निवासी अपने राष्ट्र का निर्माण सुचारू रूप से कर पाएँगे। एक परिव्राजक के रूप में भारतवर्ष का भ्रमण करते हुए मध्यप्रदेश के खण्डवा के विख्यात वकील हरिदास चट्टोपाध्याय से जब उनका परिचय हुआ तो उनसे वार्तालाप करते हुए स्वामीजी ने एक बात हरिदास को बताई। जिससे स्वामीजी की अखिल भारतीय दृष्टि परिलक्षित होती है। "बंगाली हैं, यह ठीक है किंतु हमें स्वयं को यहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए – मनुष्य बन सकें, तो सबसे अच्छा नहीं तो भारतीय तो बन ही जाना चाहिए"।[30]..

जिस प्रकार से राष्ट्र निर्माण के विषय में बात करते हुए यह देखा गया था कि राष्ट्र निर्माण से अभिप्राय राष्ट्र के चरित्र निर्माण से है। ठीक इसी प्रकार अगर विश्व के निर्माण की बात की जाए तो विश्व निर्माण से भी अभिप्राय विश्व के चरित्र निर्माण से है। सबसे पहले यह देखना चाहिए कि स्वामी विवेकानंद चरित्र को किस प्रकार परिभाषित करते हैं इस विषय पर प्रख्यात लेखिका सुनीता भटनागर लिखती हैं कि "विवेकानंद के अनुसार शुभ विचार अच्छे चरित्र की पूँजी है। कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे तथा अच्छे कार्य करे, तो उसमें इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा और उसकी इच्छा न होते हुए भी उसे सत्कार्य करने के लिए विवश कर देंगे। जब मनुष्य इतने सत्कार्य और सत चिंतन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति का उदय हो जाता है। उस समय फिर वह दुष्कर्म करना भी चाहे तो इन सब संस्कारों का

समष्टि रूप उसका मन उसे वैसा करने से तुरंत रोक देगा अर्थात् वह अपने सत संस्कारों के हाथ की कठपुतली की भाँति हो जाएगा। जब ऐसी स्थिति आ जाती है उस समय उस मनुष्य का चरित्र गठित तथा प्रतिष्ठित कहलाने लगता है। यदि तुम किसी मनुष्य के चरित्र को जाँचना चाहते हो तो उसके बड़े कार्यों द्वारा उसकी जाँच मत करो। मनुष्य के अत्यंत साधारण कार्यों की जाँच करो"।[31].. सुनीता भटनागर द्वारा लिखित इस गद्यांश में वर्णित बातों को इन शब्दों के अनुसार सत चिंता अच्छे चरित्र का सोपान है। कहा जाता है कि चिंतन में बड़ी शक्ति होती है। व्यक्ति जिस प्रकार का चिंतन करता है उसके चरित्र का निर्माण भी वैसा ही होता है। यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि वह भी वैसा ही हो जाता है। सत चिंतन करते हुए मनुष्य की प्रकृति भी सत होती चली जाती है। स्वामीजी ने किसी भी मनुष्य के भीतर पवित्रता, सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य आदि को महत्वपूर्ण माना है। ये गुण केवल भारत राष्ट्र के निर्माण के लिए ही आवश्यक नहीं है बल्कि विश्व के निर्माण के लिए भी आवश्यक हैं। उदाहरण हेतु व्यक्ति अगर सत्य निष्ठ नहीं रहेगा तो वह इस विश्व निर्माण के कार्य को किस प्रकार कर पाएगा। यहाँ अहिंसा की बात कही गई है अर्थात् मनुष्य को अपने मन से हिंसा और द्वेष की भावना का परित्याग करना चाहिए। मनुष्य को विश्व के सभी लोगों के बीच सम भाव रखना चाहिए। लेकिन एक बात यहाँ यह भी है कि अगर शत्रुओं से संघर्ष करने की आवश्यकता हो जाए तो उससे दूर नहीं भागना चाहिए। यहाँ ब्रह्मचर्य की बात की गई है अर्थात् चाहे व्यक्ति किसी भी धर्म में आस्था क्यों न रखता हो उसे सदैव ब्रह्म निष्ठ होकर ही अपने कार्य का सम्पादन करना चाहिए। अर्थात् मनुष्य जो भी कार्य कर रहा है उसका सपर्पण भगवान के श्री चरणों में ही करना चाहिए। तभी व्यक्ति के चरित्र का निर्माण सुचारू रूप से होगा।एक मनुष्य होने के नाते उसे सर्वदा सत चिंतन ही करना चाहिए। संसार के किसी भी मनुष्य को अपने चरित्र को राष्ट्रीय बनाने के साथ ही साथ वैश्विक भी बनाने का प्रयास करना चाहिए। कदाचित यही कारण है कि स्वामीजी के मन में एक समय यह विचार आया था कि वे जितने अधिक भारत के हैं उतने ही पूरे विश्व के भी हैं। ऐसा इस कारण है क्योंकि इस धरती पर जब किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है तो वह केवल समाज के किसी एक निर्दिष्ट वर्ग की उन्नति के लिए ही इस धरित्री पर नहीं आते हैं बल्कि इस संसार के सभी लोगों के लिए परित्राण की वार्ता

लेकर आते हैं। कदाचित यही कारण है कि स्वामीजी अपने गुरुदेव के उपदेशों को या उनकी शिक्षाओं को सागर पार ले जाना चाहते थे। यह न केवल भारत निर्माण बल्कि विश्व निर्माण का ही संकेत है। इस बात में कोई संदेह नहीं है। स्वामी विवेकानंद जब लंदन में श्रीमती इसाबेल के घर में महिलाओं की सभा में जाते हैं तो बहुत सारी चर्चाएँ होती हैं। जिसमें वार्तालाप के दौरान स्वामीजी यह बताते हैं कि "मेरा संकल्प है कि जहाँ लोग मुझे सुनना चाहेंगे, मैं वहाँ वेदांत का संदेश अवश्य पहुँचाऊँगा"।[32].. आलोच्य उपअध्याय में राष्ट्र निर्माण के साथ ही साथ विश्व निर्माण के विषय में भी चर्चा की जा रही है। स्वामीजी के पाश्चात्य भ्रमण का एक उद्देश्य श्री रामकृष्ण परमहंस के संदेश को सागर पार पहुँचाना भी रहा है। हालाँकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उनके अमेरिका गमन का एक उद्देश्य औद्योगिक विद्या सीखना भी है।लेकिन इसके साथ आध्यात्मिकता को भी नकारा नहीं जा सकता। मनुष्य को यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक पुरुष आध्यात्मिकता से दूर नहीं रह सकता। उनके मन की एक भावना अगर यह कहा जाए कि विश्व मैत्री की थी तो यह सही ही होगी। स्वामी के चिंतन में विश्व निर्माण की भावना को इस उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। स्वामीजी जब इसाबेल मार्गेसन के घर गए थे तब वहाँ सीसेम क्लब की महिलाएँ उपस्थित थीं जिनसे उनकी भेंट हुई और उनका परिचय भी हुआ। वहाँ पर धर्म और आध्यात्मिकता को लेकर चर्चाएँ भी हुईं। स्वामीजी ने संस्कृत के श्लोक भी सुनाए। एक आध्यात्मिक वातावरण ही वहाँ उत्पन्न हो गया। स्वामीजी की बातें श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। श्रोताओं में से ही एक महिला ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि "आप अपना देश छोड़कर इतनी दूर की यात्रा पर यहाँ आए कोई लक्ष्य तो होगा आपका। हिंदू धर्म का प्रचार करने आए हैं" ?[33].. उस श्रोता के द्वारा पूछे गए इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने जो कहा उससे उनके मन में निहित विश्व निर्माण की परिकल्पना स्पष्ट होती है। उनका उत्तर इस प्रकार था "अब जब संसार के सारे देश बाज़ार में बिकने वाली वस्तुओं का आदान-प्रदान कर रहे हैं, मैं समझता हूँ कि यही उचित समय है कि ये सारे देश अपने आदर्शों का अपने सिद्धांतों का भी आदान-प्रदान करें"।[34]..

विश्व निर्माण के दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि स्वामीजी के अनुसार एक शक्तिशाली विश्व का निर्माण सुचारू रूप से तभी हो सकता है जब विश्व के सभी राष्ट्र समस्त प्रकार के भेदों को भूलाकर आपस में एक-दूसरे की संस्कृतियों का आदान-प्रदान करेंगे। मनुष्य को केवल संसार से लेना ही नहीं है बल्कि उसे संसार को देने का प्रयास करना चाहिए। स्वामीजी की अगर बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि विदेशी संस्कृतियों से सीखनी भी चाहिए। वे लंदन की संस्कृति से बहुत कुछ सीखने भी आए हैं। स्वामीजी जब इंग्लैंड में थे तब अंग्रेज़ों ने उन्हें खुले मन से स्वीकार किया था।इसे विश्व निर्माण के दृष्टिकोण से ही देखा जाना चाहिए। स्वामीजी की वेदांत शिक्षा के प्रति लोग आकृष्ट होते चले जा रहे थे जिसमें लंदन का एक विख्यात व्यक्ति बैसिल विल्बरफोर भी थे उन्होंने आधिकारिक रूप से स्वामीजी को अपने घर पर बुलाया उनका यह कहना था कि उनका अपना छोटा पुत्र अल्बर्ट भी वेदांत का एक गंभीर अध्येता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 90

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 90

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 61

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 13

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 155

6 स्वामी गंभीरानंद, युगनायक विवेकानंद प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 3

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 61

8 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 61

9 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 129

10 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 10

[11] शंकरी प्रसाद बसु, विवेकानंद और समकालीन भारतवर्ष प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 5

[12] शंकरी प्रसाद बसु, विवेकानंद और समकालीन भारतवर्ष प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 9

[13] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 1

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 111

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड निर्देश, पृष्ठ संख्या 405

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 107

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 19

[23] लेखक नरेंद्र कोहली, न भूतो न भविषयति, पृष्ठ संख्या 11

[24] लेखक नरेंद्र कोहली, न भूतो न भविषयति, पृष्ठ संख्या 12

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 11

[26] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 13

[27] 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

[28] 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहलीजी का साक्षात्कार

[29] 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहली का साक्षात्कार

[30] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 57

[31] सुनीता भटनागर, स्वामी विवेकानंद का समाज-दर्शन, पृष्ठ संख्या 158

[32] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 110

[33] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 112

[34] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 112